# डाक टिकटों से सम्मानित महापुरुष

सुबेसिंह गुप्ता
एम.ए. (इंगलिश)
सम्पादक, 'पंचमधाम' मासिक पत्रिका
सेठ द्वारका प्रसाद सर्राफ पुरस्कार
प्राप्तकर्ता
डाक टिकट व्यवस्था: चन्द्रमोहन गुप्ता

सूर्य भारती प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-110006

ISBN: 978-93-83424-63-4

सर्वाधिकार : लेखक

प्रकाशक : सूर्य-भारती प्रकाशन
2596, नई सड़क, दिल्ली-6

दूरभाष : 011-23266412

कम्पोजिंग : गुप्ता कम्यूनिकेशन
शाहदरा, दिल्ली-110032
मो. : 0-9891640985

मुद्रक : निधि-एण्टरप्राइज़िज
शाहदरा दिल्ली-110032

संस्करण : 2019

मूल्य : 400.00

# भूमिका

यह पुस्तक ''राष्ट्र की वैश्य-विभूतियाँ'' का दूसरा संस्करण है जो वर्ष 2007 में प्रकाशित हुई थी। अब यह दूसरा संस्करण संशोधित और परिमार्जित नए-शीर्षक ''डाक टिकटों से सम्मानित महापुरुष' के साथ अब आप के हाथों में हैं। इस पुस्तक के शीर्षक को बदलना इस कारण से आवश्यक हो गया कि पहले शीर्षक से यह पता नहीं चलता था कि उसमें विभूतियों के परिचय किस उद्देश्य से दिये गये हैं। यदि केवल वैश्य विभूतियों के जीवन परिचय देने का उद्देश्य होता तो पुस्तक के पाँच सौ से भी अधिक पृष्ठ हो जाते। क्योंकि वैश्य समाज करोड़ों परिवारों वाला देश की कुल जनसंख्या का लगभग एक चौथाई है और उनमें सामाजिक सेवा औ उदारता से दान देने वाले अनेक हैं। इस समाज के व्यक्ति देश की रक्षा और सुरक्षा में कुर्बानी देने में कभी पीछे नहीं रहे हैं।

भारत सरकार का डाक विभाग हर साल देश के विशिष्ट व्यक्तियों को सम्मान देने के लिए डाक टिकट जारी करता है। अब तक इस विभाग ने हजारों की संख्या में ऐसे व्यक्तियों पर टिकटें जारी किये हैं। लेकिन इस पुस्तक में सीमित विभूतियों के जीवन परिचय शामिल किये गये हैं। वैश्य समाज प्रत्येक क्षेत्र में आगे रहता है इस समाज के व्यक्तियों ने अपनी असीम प्रतिभा और योग्यता के आधार पर ऐसी अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं जिनकी कोई कल्पना नहीं करता। इस कारण वे प्रेरणा और अनुकरण के योग्य हैं, जिनके बारे में नई पीढ़ी को अवश्य जानना चाहिए।

इस पुस्तक का पहला संस्करण वर्ष 2007 में प्रकाशित हुआ था। उसे लेखक ने समाज की आवश्यकता की पहचान करने के बाद तैयार किया था। श्री चन्द्र-मोहन को डाक-टिकट संग्रह करने का शौक था। उन्होंने वैश्य समाज की विभूतियों की डाक टिकटों का अलग फोल्डर तैयार किया हुआ था। जब उन्होंने मुझे दिखाया तो बड़ी प्रसन्नता हुई। विचार-विमर्श हुआ तो यह पाया कि वैश्य समाज से सम्बंधित साहित्य की पुस्तकों में ऐसी कोई पुस्तक देखने में नहीं आई जिसमें केवल उन विभूतियों के जीवन परिचय दिये हो जिनको सम्मानित करने के लिए भारत सरकार के डाक विभाग ने डाक टिकटें जारी की हों। इस लेखक ने लम्बे समय तक अध्ययन करके अनगिणित वैश्य विभूतियों के जीवन परिचय तैयार किये हुए थे, इसलिए पुस्तक में दिये महापुरुषों के बारे में लिखना कठिन नहीं था। लेखक के लिए यह गर्व की बात थी कि उसने वैश्य समाज से

सम्बन्धित वह साहित्य प्रदान दिया जिसकी उसको आवश्यकता थी।

क्योंकि पहला संस्करण व्यक्तिगत रूप से प्रकाशित करवाया था, उसके समाप्त होने में लम्बा समय लग गया। लेखक एक अच्छा विक्रेता नहीं हो सकता, इसलिए अब इस पुस्तक का प्रकाशन पब्लिशर्स से हुआ है। पुस्तक में विषय-वस्तु पठनीय और जीवनोपयोगी है इसलिए यह पाठकों के पास शीघ्र पहुँचने में सफल होगी, ऐसी आशा है। इसी प्रकार के उद्गार स्व. शिवकुमार गोयल जी ने प्रथम संस्करण में दिये ''प्रस्तावना'' में व्यक्त किये थे जिसे इस इस नये संस्करण में भी दिया गया है।

महापुरुषों के जीवन के तथ्यों में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उनको वभिन्न साधनों से प्राप्त किया गया है। जो विस्तार में थे उनको आवश्यकतानुसार अपने शब्दों में तैयार किया गया है। जो संक्षिप्त थे, उनमें बिना शब्द परिवर्तन के ले लिया गया है। इसलिए मेरा कर्तव्य बनता है कि उनका बिना नाम लिए आभार व्यक्त करूँ।

साथ ही, अरुण गुप्ता, सूर्या भारती प्रकाशन का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस तीसरी पुस्तक को प्रकाशित करने की स्वीकृति दी। इससे पहले 'महापुरुषों के अनमोल प्रसंग' पुस्तक उनके द्वारा प्रकाशित हो चुकी है दूसरी पुस्तक ''राष्ट्र के कर्णधार'' प्रकाशित होने वाली है।

अन्त में, कोई लेखन कार्य त्रुटि विहीन नहीं कहा जा सकता।। मैं पुस्तक इस पुस्तक में भी पाठकों की पैनी निगाहों द्वारा त्रुटियाँ पाये जाने की सम्भावना को नकार नहीं सकता। अत: उनसे निवेदन है कि उनको अनदेखी करें और मुझे क्षमा का दान दें।

**( शिव महारात्रि )** **सुबेसिंह गुप्ता**



# अनुक्रमणिका

| क्र.स. | विवरण | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी | 7 |
| 2. | कस्तूरबा गाँधी | 11 |
| 3. | पंजाब केसरी लाला लाजपत राय | 14 |
| 4. | डॉ. भगवान दास | 16 |
| 5. | जमनालाल बजाज | 19 |
| 6. | राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त | 22 |
| 7. | भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र | 25 |
| 8. | महाराजा अग्रसेन | 27 |
| 9. | सर गंगाराम | 31 |
| 10. | डॉ. राममनोहर लोहिया | 35 |
| 11. | डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल | 37 |
| 12. | घनश्याम दास बिड़ला | 39 |
| 13. | डॉ. राजा सर एम.ए. मुत्तैया चेट्यिार | 42 |
| 14. | मोहनलाल सुखाड़िया | 44 |
| 15. | राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त | 45 |
| 16. | श्रीप्रकाश | 49 |
| 17. | जयशंकर प्रसाद | 52 |
| 18. | हनुमानप्रसाद पोद्दार | 55 |
| 19. | श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' | 58 |
| 20. | सन्त कवि सुन्दरदास | 60 |
| 21. | डॉ. जगदीश चन्द्र जैन | 62 |
| 22. | आचार्य तुलसी | 63 |
| 23. | पोट्टि श्रीरामुलु | 66 |
| 24. | डी.एन. जटिया | 67 |
| 25. | भामाशाह | 69 |
| 26. | चन्द्रगुप्त मौर्य | 71 |
| 27. | बृजलाल बियाणी | 74 |

| | | |
|---|---|---|
| 28. | बाबू गुलाबराय | 77 |
| 29. | आनन्द ऋषिजी | 80 |
| 30. | नरेन्द्र मोहन | 82 |
| 31. | डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री | 85 |
| 32. | ज्योति प्रसाद अगरवाला | 87 |
| 33. | आर्चाय भिक्षु | 89 |
| 34. | वालचंद हीराचन्द | 91 |
| 35. | पद्मपत सिंहानिया | 93 |
| 36. | ए.एम.एस. मुरूगप्पा चेट्टियार | 95 |
| 37. | जवाहर लाल दर्डा | 97 |
| 38. | लाला दीनदयाल | 98 |
| 39. | डॉ. आर.एम. अलगप्पा चट्टियार | 100 |
| 40. | डा. लक्ष्मी मल सिंघवी | 102 |
| 41. | डा. के. के. बिड़ला | 105 |
| 42. | श्री रामचरण अग्रवाल | 107 |
| 43. | श्रीमति दिनेशनंदिनी डालमिया | 109 |
| 44. | गौरी शंकर डालमिया | 111 |
| 45. | वीरचन्द राघव जी गाँधी | 113 |
| 46. | देशबन्धु गुप्ता | 115 |
| 47. | लक्ष्मीपत सिंहानिया | 117 |
| 48. | कमलापत सिंहानिया | 119 |
| 49. | पूर्णचन्द गुप्त | 121 |
| 50. | दुर्गा प्रसाद चौधरी | 123 |
| 51. | रामगोपाल माहेश्वरी | 125 |
| 52. | डा. दौलतसिंह कोठरी | 127 |
| 53. | आदित्य विक्रम बिड़ला | 129 |
| 54. | बाबू बनारसी दास | 131 |
| 55. | ला. हरदयाल | 132 |
| 56. | हरख चन्द नाहटा | 134 |
| 57. | सूचि | 136 |




# (1) राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

भारत सरकार के डाक विभाग ने महात्मा गाँधी जी के सम्मान में सर्वप्रथम 15-8-1948 को ( क ) 1½ आना ( अर्थात् 10 पैसे ) मूल्य की 15, 950 डाक टिकटें ( ख ) 3½ आना ( अर्थात् 20 पैसे ) मूल्य की 1350 डाक टिकटें ( ग ) 12 आना ( अर्थात् 75 पैसे ) मूल्य की 250 डाक टिकटें ( घ ) 10 रूपये की मूल्य केवल 100 डाक टिकटें जारी की।

ये टिकटें किन्हीं गिने-चुने व्यक्तियों के पास संग्रहित हैं जिनका मूल्य वर्तमान में लाखों रूपये है और वे हमारी बहुत बड़ी धरोहर है। भारत सरकार ने और दुनिया की कई सरकारों ने उनके सम्मान में 500 (पांच सौ) से अधिक विभिन्न प्रकार की डाक टिकटें जारी की तथा अब भी निरन्तर छप रही हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ही एक ऐसी विभूति हैं जिनको देश और विदेश में इस प्रकार का अद्वितीय सम्मान प्राप्त हुआ है। संसार के लगभग 70 देशों ने महात्मा गाँधी की स्मृति में डाक टिकटें जारी की हैं।

महात्मा गांधीजी का पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था उनका जन्म गुजरात राज्य के काठियावाड जिले के पोरबन्दर नगर में आश्विन वदी 12 सम्वत् 1925 तदानुसार 2 अक्टूबर 1869 को हुआ था। उनके पिताजी का नाम कर्मचन्द गांधी ओर माताजी का नाम पुतलीबाई था। गाँधी परिवार वैश्यों की उपजाति है वे मोढेरा गाँव से पलायन करके पोरबन्दर आकर बस गये थे इसलिए वे मोढवणिक कहलाये। गुजराती भाषा में पंसारी को गाँधी कहते हैं। गुजरात-सौराष्ट्र में जड़ीं-बूटी, नमक मसाले, हल्दी, फिटकरी आदि बेचने वाले को गाँधी कहते हैं। इसमें धर्म और जाति से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

महात्मा गाँधी तीन भाई और एक बहन में सबसे छोटे थे। एक भाई का नाम लक्ष्मीदास (दूसरा नाम कालीदास), दूसरे का नाम करसन गाँधी और बहन का नाम रलियात बहन जिसको सभी गोकी फाइबा कहते थे। महात्मा गाँधी का

बहन की भांति घरेलू नाम 'मोनिया' था। महात्मा गाँधी की आरम्भिक शिक्षा धुलिशाला में हुई। क्योंकि मिट्टी की धूल पर अक्षर बनाकर सिखाया जाता था इसलिए धूलिशाला नाम पड़ा। आगे की शिक्षा राजकोट नगर में प्राप्त की। उनकी 13 वर्ष की आयु में ही कस्तूरबा बाई से विवाह हो गया था। उन दिनों रूढिग्रस्त समाज में समुद्र यात्रा को दुराचरण माना जाता था। ऐसे विरोध के वावजूद वे बैरिस्ट्री की शिक्षा के लिए इंग्लैंड गये। 10 जून 1891 को उनका बैरिस्टर के रूप में पंजीकरण हो जाने के बाद वे 11 जून 1891 को स्वदेश के लिए रवाना हुए। आरम्भ में वकालत के मामले में असफल रहे। दादा अबदुल्ला सेठ के कोर्ट केस के सिलसिले में दक्षिणी अफ्रीका 1893 में पहुँचें। यहाँ अंग्रेज काले निवासियों से पक्षपातपूर्ण व्यवहार करते थे। गांधी जी को भी प्रथम श्रेणी का टिकट होने के बावजूद रेलगाड़ी से सामान के साथ उतार दिया गया। घोड़ा गाड़ी में सफर करने से मना कर दिया गया। दक्षिणी अफ्रीका में रहने के दौरान भारत से लाये गये श्रमिकों की हालत जानने का अवसर मिला। इस विषय में भारत लौट आने पर पूरा विवरण प्रकाशित किया। वह पुस्तिका **'ग्रीन बुक'** के नाम से विख्यात हुई। इस विषय में गाँधी जी ने अनेक जनसभा में भाषण भी दिये। दक्षिणी अफ्रीका के समाचार पत्रों ने उन पर समाचार बढ़ा-चढ़ाकर दिये। समाचार पत्रों ने गांधीजी के दूसरी बार आगमन का समाचार प्रमुखता से छापा। बन्दरगाह से बाहर आने पर उन पर भड़के हुए अंग्रेजों ने आक्रमण किया। पुलिस ने आकर उनको अधमरी हालत में बचाया। दक्षिणी अफ्रीका की सरकार ने एक कानून बनाये जाने की घोषणा की थी जिसके अनुसार भारतीयों को निर्वाचन में भाग लेने के लिए अयोग्य करना था। गाँधीजी तीसरी बार 1902 में दक्षिणी अफ्रीका गये। इस बार भी टेलीग्राम द्वारा उनको बुलाया गया था। सरकार ने ईसाई मत से विवाह के अतिरिक्त अन्य धर्मों के अनुसार विवाहों को गैरकानूनी घोषित कर दिया। भारतीयों पर 3 (तीन) पौंड का टैक्स लगाने के साथ अन्य नसलवादी नियम लागू करके स्थिति को विकट बना दिया था। गांधीजी ने उनका मुकाबला करने के लिए वहाँ लम्बे समय तक रहने का फैसला किया। जोहनसवर्ग में कार्यालय खोला और फिनिक्स नाम से आश्रम स्थापित किया। वह डरबन शहर से 14 मील दूर था। यहाँ **'इंडियन ओपिनियन'** नामक साप्ताहिक समाचार पत्र स्थापित किया, जिसके द्वारा और जनसभाओं में भाषणों में सरकार से टकराने में खतरों और कष्टों से भारतीयों को अवगत करवाया। निश्चित समय पर हजारों लोगों ने भाग लिया जिसमें किसी प्रकार की हिंसा नहीं



करने का आदेश था। इसी समय इसे 'सत्याग्रह' नाम दिया गया। 9-11-1993 को जुलूस करते हुए 4 दिन में 3 बार गिरफ्तार किये गये और यहीं पर गांधीजी पर मुकद्दमा चलाकर तीन महीने का कारावास दिया गया।

इंग्लैंड में शासन में परिवर्तन हुआ। नये ब्रिटिश सचिव ने महात्मा गांधी की मांगों को उचित माना और दक्षिणी अफ्रीका की सरकार को उनको स्वीकार कर लेने के आदेश दिये। इस प्रकार सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को राहत मिली और गांधीजी का अफ्रीका आने का उद्देश्य पूरा हुआ। वे 9-1-1915 को मुम्बई पहुंचे।

महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरू मानते थे। उनकी मृत्यु होने के बाद, गाँधी जी ने दिसम्बर 1916 में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेकर राजनीतिक जीवन आरम्भ किया। राजकुमार शुक्ला के निरन्तंर आग्रह पर वे नील की खेती करने वाले किसानों की समस्या को सुलझाने के लिए चम्पारन गये। योजनाबद्ध तरीके से प्रशासन के सामने मामला पेश करने से सफलता मिली। चम्पारन में ही सूचना मिली की अहमदाबाद में मिलों के श्रमिकों में भारी असंतोष है। यहाँ पर उन्होंने उपवास रखा। इससे मिल-मालिक मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए सहमत हो गये। इसके बाद 1917 और 1918 के वर्ष, गांधीजी गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों की समस्या को सुलझाने में लगे रहे।

11 नवम्बर 1918 को प्रथम महायुद्ध बन्द हुआ। इसके बाद, अंग्रेजों ने भारतीयों पर दमन और अत्याचारों को बढ़ाने के उद्देश्य से रोलेट एक्ट लागू कर दिया। इसका सारे देश में विरोध किया गया। 13 अप्रैल 1919 को जलियाँवाला गोली काण्ड हुआ। दिसम्बर 1919 में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें गांधीजी ने सक्रियता से भाग लिया। इसमें सरकारी दमन की निंदा की गई। पहली अगस्त 1920 को तिलक का स्वर्गवास हो गया। अब कांग्रेस और भारतीय जनता को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए नेतृत्व महात्मा गांधीजी में दिखाई दिया। 11 सितम्बर 1920 को कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें नीतियों में आधारभूत परिवर्तन लाये गये। अगले नागपुर के अधिवेशन में गांधीजी ने कांग्रेस पार्टी का नया संविधान रखा और बहुत सारे नियमों में परिवर्तन हुए। बारदोली में किसानों पर अत्याचार हो रहे थे, वहाँ पर सरदार-पटेल के साथ आन्दोलन चलाया। ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपना शासन लम्बा करने के लिए हर प्रकार के अत्याचार और दमन किये। 1922 में उनको देशद्रोह के आरोप में 6 वर्ष

के कारावास की सजा दी गई। यरवदा जेल में अपेंडिसाइड का आप्रेशन किया गया। स्वास्थ्य को देखते हुए उनको 5 फरवरी 1924 को मुक्त कर दिया गया। भारत देश में ब्रिटिश वायसराय के परिवर्तन के साथ शासन की नीति में परिवर्तन होता था। महात्मा गाँधी बुराईयों का विरोध करने के लिए उपवास करते रहते थे। 3 फरवरी 1928 को साइमन कमीशन बम्बई पहुँचा जिसका भारी विरोध किया गया। लाहौर में विरोध करते हुए लाठियों की चोट के कारण ला. लाजपतराय की मृत्यु हो गई। महात्मा गाँधी इंग्लैंड की सरकार के निमन्त्रण पर राउन्ड टेबल कान्फ्रेंस के लिए इंग्लैण्ड गये और 18 दिसम्बर 1993 को वापिस आये। इस 84 दिन की बातचीत का कोई परिणाम नहीं निकला। वापिस आने पर उनको गिरफ्तार कर लिया गया। साथ में कांग्रेस के अन्य नेता भी कैद में ठूंस दिये गये। कांग्रेस पार्टी को गैर–कानूनी घोषित कर दिया गया। सितम्बर 1932 में गाँधी जी को समाचार पत्रों से ज्ञात हुआ कि अल्पसंख्यकों, अछूत दलितों को अलग से असेम्बली के सदस्य चुनने का अधिकार देने वाला कानून सरकार लागू करेगी। इसके विरूद्ध गांधीजी ने आमरण अनशन करने की घोषणा की। डॉ. अम्बेडकर की सहमति मिल जाने पर सरकार ने अछूतों और दलितों सम्बन्धी कानून में संशोधन करके लागू किया। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में 'करो या मरो' प्रस्ताव पारित किया गया। इससे घबराकर सरकार ने सभी नेताओं को बन्दी बनाना शुरू कर दिया। महात्मा गाँधी और कस्तुरबा को पूना के समीप यरवदा में आगाखां पैलेस में कैद करके रखा गया था। यहाँ पर दिसम्बर 1943 में कस्तूरबा की मृत्यु हो गई। ब्रिटिश सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति के कारण, मुस्लिम लीग को महत्त्व मिलने लगा और उसने अलग शासन की मांग करनी आरम्भ की। देश में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। इसी दौरान ब्रिटिश पार्लियामेंन्ट के चुनाव हुए और लेबर पार्टी की सरकार ने सत्ता सम्भाली। नये प्रधानमंत्री ने भारत को स्वाधीनता प्रदान करने की घोषणा की, जिसके लिए एक कैबिनेट कमेटी भेजने का फैसला लिया। देश के विभाजन के साथ स्वाधीनता मिली। महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने के लिये उपवास किया। 15 अगस्त 1947 को देश के स्वतन्त्र होने के साथ राष्ट्रीय सरकार ने सत्ता ग्रहण की। साम्प्रदायिक हिंसा रुक तो गई परन्तु उसकी मानसिकता ने 30 जनवरी 1948 को महात्मा गाँधी की जान ले ली। इस प्रकार देश को स्वतन्त्रता दिलाने वाला उस पर कुरबानी देकर सदा के लिए विदा हो गया।



# (2) कस्तूरबा गाँधी

**भारत सरकार ने कस्तूरबा गाँधी जी के सम्मान में 22-2-64 को 15 पैसे मूल्य की 20 लाख, 2-10-69 को महात्मा गाँधी के साथ 20 पैसे मूल्ये की 80 लाख और कस्तूरबा ट्रस्ट पर 22-2-96 को 1 रूपये मूल्य की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।**

कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी की सहभागिनी थी। उनके पिताजी का नाम गोकुलदास मकनजी और माताजी का नाम श्रीमति बृजकुंवरी था। उनके पिताजी-पोरबन्दर के प्रसिद्ध व्यापारी थे और महात्मा गांधी के पिता कर्मचन्द गाँधी से घनिष्ठ मित्रता थी। उनका जन्म 1869 के अप्रैल के महिने में हुआ। इस प्रकार वे अपने पति से 6 (छः) महीने आयु में बड़ी थी। पारिवारिक सम्बन्धों के कारण कस्तूरबा की सगाई 6 या 6½वर्ष की आयु में हो गई थी और वर्षों बाद 13 वर्ष की आयु में विवाह हुआ। उस समय लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता था इसलिए वे अशिक्षित और निरक्षर थीं।

समाज में पुरुष प्रधानता के रिवाजों के अनुसार, कस्तूरबा को विवाह के पश्चात् पतित्व का अधिकार और पर्दा प्रथा को सहना पड़ा। महात्मा गाँधी की इंग्लैंड में शिक्षा और दक्षिणी अफ्रीका में मुकद्दमें के लिए जाने के समय, कस्तूरबा राजकोट में पति के घर रही। वे बहुत गम्भीर और परिश्रमी प्रकृति वाली महिला थी और महात्मा गाँधी के जीवन में मजबूत आधार और सहायक सिद्ध हुई। उनकी जेठानी जब घंटों पूजापाठ में लगी रहती, वह अकेले ही घर के सभी काम निबटा लेती थी।

महात्मा गाँधी अफ्रीका की प्रथम यात्रा के बाद लौट आये तो उन्होंने देश की यात्राऐं की और दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की दुर्दशा के विषय में बयान दिये। दक्षिणी अफ्रीका से जल्द ही तार मिला। इस बार वे कस्तूरबा, अपने दोनों पुत्र और अपनी बहन के पुत्र के साथ वहाँ गये। समाचार पत्रों में गांधीजी के बयानों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रकाशित किया था। जिससे वहाँ के गौरे निवासी उसके विरोधी हो गये थे जब वे बन्दरगाह पर जलयान से पहुंचे तो उसे 13 दिनों तक

समुद्र में खड़े रखा। तत्पश्चात जब जहाज से बाहर आये तो कस्तूरबा को अलग से भेजा और स्वंय एक अंग्रेज मित्र के साथ चल दिये। यह समाचार सुनकर भीड़ एकत्रित हो गई और महात्मा गांधी को गम्भीर रूप से घायल कर दिया। इस अवस्था में कस्तूरबा ने उनकी सेवा सुश्रुषा की। स्वास्थ्य होने के कुछ वर्षो तक गांधीजी ने कोई राजनीतिक कार्य नहीं किया। कस्तूरबा ने इस काल में सच्ची गृहस्थी का सुख प्राप्त किया और सच्ची जीवन संगिनी के रूप में गांधीजी का हर परिस्थिति में साथ दिया। वकालत से जो मिलता उससे वह बड़ी दक्षता से निर्वाह कर लेती।

इस दक्षिणी अफ्रीका की भूमि पर ही, गाँधीजी ने 'महात्मा गांधी' बनने की दिशा में प्रयोग आरम्भ किये। स्त्री को सम्भोग की वस्तु न मानते हुए ब्रह्मचर्य व्रत लिया। सादा भोजन बिना मिर्च मसाले के आरम्भ किय। कस्तूरबा की आयु तब लगभग 35 वर्ष थी। इस युवावस्था में सांसारिक इच्छाओं को त्यागकर एक आदर्श पेश किया। 1901 में महात्मा गांधी ने स्वदेश लौटने का फैसला लिया तो भारतीयों ने उनकी सेवाओं के लिए बहुमूल्य उपहार दिये। उसमें 50 (पचास) गिन्नियों का एक हार भी था जिसको कस्तूरबा अपने पास भविष्य की आर्थिक सुरक्षा के उद्देश्य से रखना चाहती थी। गांधीजी के आग्रह पर उसे भी जनकल्याण के कार्यों में प्रयोग करने के लिए मान गई।

महात्मा गांधी में अहिंसा के भाव भी कस्तूरबा की देन है। एक बार सनातनी रूढिता के कारण, गांधीजी ने कस्तूरबा को घसीटते हुए घर से चले जाने को कहा तो उसने ही सहिष्णुता और शान्त स्वभाव से स्थिति को सुलझाया। संकट की घड़ी पुत्र मणिलाल के लम्बे समय से पीड़ित होने पर आई। कस्तूरबा के सहधर्मिता के स्वभाव के कारण प्राकृतिक उपचार से वे स्वस्थ हुए।

महात्मा गांधी तीसरी बार दक्षिणी अफ्रीका गये और वहां फिनिक्स आश्रम की स्थापना की। इसमें कस्तूरबा का ग्रहणी की इच्छानुसार व्यक्तिगत जीवन नहीं रहा। वहाँ वे गम्भीर रूप से बीमार हो गई। महात्मा गाँधी की अनुमति के बावजूद डाक्टरों के आग्रह पर भी माँस का सेवन नहीं किया। दक्षिणी अफ्रीका में ही 'घरेलू सत्याग्रह' पर प्रयोग हुआ। कस्तूरबा एक बार और बीमार हो गई। गांधीजी ने कुछ दिन नमक छोड़ देने को कहा। कस्तूरबा ने असम्भावित बताकर स्वयं छोड़ देने को कहा। गाँधीजी दृढ़ निश्चयी तो थे ही। तत्काल नमक और दाल का प्रयोग एक वर्ष नहीं करने का निश्चय जताया जो उन्होंने 6 (छः) वर्ष तक निभाया।



कस्तूरबा की पहली जेल यात्रा दक्षिणी अफ्रीका में ही हुई। उन्होंने वहाँ रह रही महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचारों का विरोध किया था। जब जेल से बाहर आई तो शरीर क्या, केवल हड्डियाँ ही नजर आई।

कस्तूरबा बहुत बार महात्मा गांधी के कष्ट निवारण में सहायक सिद्ध हुई। दक्षिणी अफ्रीका में दो बार, पहले बन्दरगाह घटना में, दूसरी बार जब पठानों ने भ्रम से गांधी को अधमरा कर दिया था। साधारण वृत्तिवाली महिलाओं की भाँति, कस्तूरबा भविष्य में गांधीजी को राजनीतिक कार्यों से रोकती, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, वरन् उनसे कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया।

गांधीजी ने भारत लौटकर अहमदाबाद में 'सत्याग्रह आश्रम' की स्थापना की जिसमें 25-30 स्त्री पुरूष रहते थे। कस्तूरबा ने उसके संचालन का उत्तरादायित्व सम्भाला। यहाँ पर ही, एक अछूत के आश्रम-प्रवेश के बाद कस्तूरबा ने छुआछूत का सनातनी व्यवहार त्याग दिया। चम्पारन में निहलों की समस्या के निवारण के लिए महात्मा गांधी का ने पहला राजनीतिक कार्य किया, तब कस्तूरबा ने गांव-गांव जाकर रचनात्मक कार्य किये। यहीं पर कस्तूरबा द्वारा महिलाओं की हालत बताने पर, गाँधीजी ने एक धोती प्रयोग करने का व्रत लिया था। कस्तूरबा ने इसी प्रकार गुजरात के खेड़ा जिले के सत्याग्रह के अवसर पर कार्य किये। कस्तूरबा जी गांधीजी के लिए जीवनदायनी सिद्ध हुई। गाँधीजी ने गायों और भैंसों का दूध पीना छोड़ दिया था। बीमारी के कारण गाँधीजी के लिए दूध अत्यन्त आवश्यक हो गया था। तब कस्तूरबा ने उनको बकरी का दूध पीने का सूझाव दिया। इसको स्वीकार करने के बाद महात्मा गाँधी स्वस्थ हो पाये।

कस्तूरबा अपने जीवन में 7 (सात) बार जेल गई। पहली बार दक्षिणी अफ्रीका में और छः (6) बार भारत देश में। उनकी अन्तिम जेल यात्रा आगांखां प्लेस में थी, जहाँ उनकी 22 फरवरी 1944 को मृत्यु हो गई। उन्होंने अपने जीवन में कितने कष्ट सहन किये उनकी कोई गिनती नहीं थी। जब साम्प्रदायिक दंगों के कारण गाँधीजी ने दिल्ली में 21 दिन का उपवास किया था, कस्तूरबा की मनः स्थिति कैसी होगी?उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। इसी के कारण वे समय से पूर्व ही वृद्ध नजर आने लगी थी। जब गाँधीजी को जेल भेज दिया जाता था तो कस्तूरबा जन-उत्साह बनाये रखने के लिए सक्रिय भाग लेती थी। कस्तूरबा जी अत्यन्त भावुक भी थी। जेल में महादेव देसाई की मृत्यु और गाँधीजी द्वारा 21 दिन के उपवास के सदमें को वे सहन नहीं कर सकी जो उनकी मृत्यु का कारण बने।

# (3) पंजाब केसरी-लाला लाजपत राय

**भारत सरकार ने लाला लाजपतराय जी के सम्मान में 28 जनवरी 1965 को 15 पैसे मूल्य की 20 लाख डाक टिकट जारी की।**

लाला लाजपतराय का जन्म 18 फरवरी 1865 ई. में अपने ननिहाल डोड़िकाग्राम में हुआ। उनके पिताजी श्री राधाकृष्ण लुधियाना जिले के जगरावँ गाँव के निवासी थे और सरकारी सेवा करते थे। लाला लाजपतराय अध्ययन में बहुत कुशाग्र थे। लाहौर विश्वविद्यालय से एन्ट्रेन्स परीक्षा बहुत अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की, परिणामस्वरूप सरकार की ओर से छात्रवृत्ति मिली। लाजपतराय ने 1885 में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करके अपनी शिक्षा पूर्ण की।

लाला लाजपतराय में समाज सेवा की भावनाप्रारम्भिक जीवन से ही थी। लाहौर नगर की आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। अंग्रेजों के कुशासन और शोषण नीति के कारण उन दिनों अकाल पड़ जाना कोई नई बात नहीं होती थी। अकाल में भोजन सामग्री, जल, पशुचारे आदि की कमी पड़ने से जनजीवन त्रस्त हो जाता था। 1896 ई. में उत्तर भारत में, 1899 ई. में राजस्थान में और 1907-08 ई. में उड़ीसा, मध्य प्रदेश और उत्तर भारत में भयंकर अकाल पड़ा था। इस त्रासदी के समय दिन-रात एक कर दिया और अकालग्रस्त लोगों को सामग्री और धन से सहायता की। उनकी इस सहायता प्रवृत्ति ने अंग्रेजों को भी मुग्ध कर दिया और उन्होंने उनकी भूरि-भूरि सराहना की।

नेताओं के दिशा-निर्देश से लोगों में अंग्रेज शासन का विरोध होना प्रारम्भ हो गया। उन्होंने कांग्रेस पार्टी को जो स्वतन्त्रता के लिए प्रार्थना पत्र, अपील आदि करती थी अब ठोस कार्यवाही करने का साधन बना लिया। लाला लाजपतराय ने असंख्य लेख लिखे और जोशीले भाषण दिये। 16 मई 1907 को अंग्रेज सरकार ने उन्हें विद्रोही घोषित करके देश निर्वासन की सजा दे दी और उन्हें रंगून के पास मांडले जेल में भेज दिया।

लाला लाजपतरायजी 11 नवम्बर 1907 को जेल से छूटे। उसके बाद राजनीतिक गतिविधियां तेज हो गई। कांग्रेस में दो दल बन गये थे-नरम दल और गरम दल। इन दोनों में नीतिगत असमानता थी किन्तु पार्टी अविभाजित रही।



ब्रिटिश शासन बहुत शक्तिशाली था। कांग्रेस पार्टी के धीमे विरोध से स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य जल्दी प्राप्त होना संभव नहीं था। देश में असन्तोष व अराजकता को देखकर ब्रिटिश शासन ने साइमन कमीशन यह जांच करने के लिये नियुक्त किया कि भारत के लोग स्वराज के योग्य हैं कि नहीं। यह कार्य भारत देश की गैरत पर सीधा आक्रमण था। कांग्रेस ने इस कमीशन के विरोध का फैसला किया। लाला लाजपतराय ने इस कमीशन का 30 अक्तूबर 1928 को लाहौर रेलवे स्टेशन पर पहुंचने पर विरोध करने के लिए जुलूस का नेतृत्व किया। ''साइमन वापिस जाओ'', "Simon Go Back"और ''वन्दे मातरम'' के नारों से स्टेशन गूंज उठा। पुलिस एक गोरे अफसर साण्डर्स के अधीन वहाँ प्रबन्ध के लिए तैनात थी। उसको यह सहन नहीं हुआ और अचानक लाठियाँ चलानी शुरू कर दी। अनगिनत लाठियाँ लाल लाजपतराय की छाती पर पड़ी। रायजादा हंसराज ने उनके ऊपर छाकर लाठियाँ अपने ऊपर झेली। बाद में एक जलसा हुआ और उसमें लाला लाजपतराय ने बड़ा जोशिला भाषण दिया जिसमें ये ऐतिहासिक वाक्य कि **''मेरे शरीर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील होगी''** आज भी हर व्यक्ति को याद है। दिल्ली से कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में भाग लेकर वापिस आये तो छाती के घाव और सूजन घातक सिद्धा हुई और उनकी मृत्यु 17 नवम्बर 1928 को 63 वर्ष की आयु में हो गई। यह समाचार सारे विश्व में आग की तरह फैल गया। भारतीय नौजवानों ने इस घटना को देश की अस्मिता का प्रशन बना लिया और बाद में शहीद भगत सिंह ने उस गोरे पुलिस अफसर साण्डर्स की हत्या करके बदला लिया।

**स्कॉटलैंड ने भी लाला लाजपतराय की स्मृति में डाक टिकट जारी किया है।**

# (4) डॉ. भगवानदास

**भारत सरकार ने भारत रत्न डॉ. भगवान दास के सम्मान में 20-1-1969 को 20 पैसे मूल्य की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।**

डॉ. भगवानदास का जन्म 12 जनवरी 1869 को वाराणसी में हुआ था। उनके पिताजी का नाम साह माधवदास था। बारह वर्ष की आयु में एन्ट्रेस की परीक्षा पास की। 17 वर्ष की आयु में 1885 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र लेकर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे। उनकी प्रतिभा और कुशाग्रता को देखकर लोग दांतो तले उंगली दबाते थे। यह आश्चर्य की बात थी कि इतनी अल्पायु में उन्होंने इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी। दर्शन शास्त्र डॉ. भगवानदास के जीवन का अंग बन गया था। साइन्स ऑफ इमोशन और साइन्स ऑफ पीस की रचना करके विद्वानों और बुद्धिजीवों में चर्चा का विषय बने। उनकी विद्वता और प्रतिभा का संज्ञान लेते हुए, भगवान दास को 1929 में बना[illegible] विश्वविद्यालय ने और 1937 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने अपनी सर्वोच्च उपाधि डी. लिट. से अलंकृत किया। आपने 30 पुस्तकों का सृजन किया।

डॉ. भगवानदास का विवाह 15 वर्ष की आयु में हुआ था। परिवार में विपुल धन-दौलत होते हुए भी उनके पिताजी ने एक अध्यापक की शिक्षित पुत्री से उनका विवाह करके आदर्श प्रस्तुत किया। वे कहा करते थे कि परिवार की गरिमा, बड़प्पन पैसे की तराजू में नहीं तोला जा सकता बल्कि चरित्र और गुणों से आंका जाता है। डॉ. भगवानदास का बाद का दर्शन-शास्त्र इन्हीं सिद्धान्तो पर आधारित रहा।

शिक्षा के बाद, डॉ. भगवानदास ने आरम्भ के आठ वर्ष सरकारी नौकरी की। वे गाजीपुर, कंचनपुर व इलाहाबाद के कलैक्टर रहे। इस कार्य के दौरान उनको जनता से समीप से सम्पर्क का अवसर मिला। उनकी आवश्यकताओं और पीड़ा को जाना। इसी समय इनका परिचय डॉ. एनी बेसेन्ट से हो गया। पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण नौकरी छोड़नी पड़ी। डॉ. बेसेन्ट थ्योसोफी (Theosophy) अर्थात "आध्यात्म द्वारा ईश्वर का ज्ञान व आनन्द" की सक्रिय नेता थी। यह एक आन्दोलन का रूप ले चुका था। डॉ. भगवानदास का चिन्तन और लेखन, धर्म, शिक्षा, समाज कल्याण, राजनैतिक परिवर्तन आदि क्षेत्र में था। उनका चिन्तन डॉ. बेसेन्ट के उद्देश्य से मेल खाता था। इस प्रकार ये दोनों



एक टीम बनाकर साथ-साथ भारत भ्रमण करते रहे। जहाँ यूरोप के बुद्धिजीवीयों ने तीन-आर (Three R's) अर्थात Reading (पढ़ना), Writing (लिखना), Arithmatic(गणित) को उच्च शिक्षा और चरित्र निर्माण का आधार माना, आपने एक और "आर" अर्थात् Religion (धर्म) को जोड़ा और जोर देकर सिद्ध किया कि जीवन में शिक्षा और चरित्र निर्माण का उच्च लक्ष्य धर्मज्ञान और उसके चिन्तन के बिना शुष्क और निर्जीव रहेगा। डॉ. भगवानदास का यही सिद्धान्त देश के निर्माण और उत्थान में कारगर सिद्ध हुआ।

1921 में डॉ. भगवानदास को काशी विद्यापीठ का कुलपति नियुक्त किया गया। डॉ. भगवानदास का महात्मा गांधी से निकट सम्बन्ध था। उनके निर्देशन में हरिजनों के उद्धार के लिए आन्दोलन चलाया। अग्रेंज भारतीय समाज में संगठन को अपने साम्राज्य के लिए एक बाधा मानते थे। उन्होंने उच्च जाति को उकसाकर इस कार्य का विरोध करवाया। महात्मा गांधी ने डॉ. भगवानदास को धार्मिक ग्रन्थों से उस सामग्री को संकलित करके एक पुस्तक तैयार करने को कहा जिससे यह सिद्ध हो जाये कि हरिजन उद्धार धर्म के विरूद्ध नहीं है। डॉ. भगवानदास ने जो सामग्री जुटाई वह आज भी इस पक्ष को उजागर करने के लिये पर्याप्त है।

डॉ. भगवानदास 1923 से 1925 तक बनारस नगर पालिका के चेयरमैन रहे। उन्होंने आयरलैण्ड की संस्था की भांति इसको भी स्वतन्त्र और स्वायत बनाने का प्रयत्न किया। वे मानते थे कि जनसेवा के लिय योग्यता और निष्ठा हो तो निर्वाचन में प्रचार करने की आवश्यकता नहीं होती है।

डॉ. भगवानदास ने अंग्रेजों द्वारा हिन्दू-मुसलमानों में विभाजित की नीति को समीप से देखा था। जब कांग्रेस नेताओं के सामने मुस्लिम लीग के नेता ने कहा कि हिन्दू सदा आक्रमणकारी (जारीहाना) और मुसलमान आत्मरक्षक (दफियाना) है तो अन्य नेता द्वारा कोई उत्तर न देने पर डॉ. भगवानदास ने इतिहास के उदाहरण देकर सिद्ध किया कि हिन्दू कभी आक्रमणकारी नहीं रहा। महमूद गजनवी, शहाबुद्दीन आदि के अत्याचार सब जानते थे जिन्होंने अपने धर्म के लोगों तक को भी नहीं बक्शा था।

समाज और देश सेवा का नशा डॉ. भगवानदास में भी था। वे सम्पन्न परिवार के होते हुये भी हर सुख सुविधा को त्यागकर सन् 1921 में महात्मा गाँधी के आह्वान पर असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। एक वर्ष तक के कारावास का दण्ड मिला। इस प्रकार के कष्ट सहना उनके लिए कठिन नहीं था, परन्तु पौत्र

और बहू के देहान्त के सदमें को वे सहन नहीं कर सके। पौत्र की बीमारी के दिनों में उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया था। 57 वर्ष की आयु में मिर्जापुर के चुनार में घर बनवाकर रहने लगे। इनको काफी पीने का बड़ा शौक था। डॉ. भगवानदास को 32 बार दिल का दौरा पड़ा और बहुत कमजोर हो गये थे। 18 सितम्बर 1958 को रात आठ बजे उनका देहान्त हुआ।

डॉ. भगवानदास देश को विरासत में अपने सुयोग्य पुत्र श्रीप्रकाश को दे गये जिन्होंने विभिन्न प्रकार से देश की सेवा की। डॉ. भगवानदास को 1955 में देश के प्रथम राष्ट्रपिता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्र के सर्वोच्च पदक **''भारत रत्न''** से विभूषित कर उनकी देश सेवा को प्रतिष्ठित किया।



## (5) जमनालाल बजाज

**भारत सरकार ने सेठ जमनालाल बजाज के सम्मान में 4-11-1970 को 20 पैसे मूल्य की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।**

जमनालाल बजाज का जन्म 4 नवम्बर 1889 को राजस्थान प्रान्त के काशी का वास गांव में हुआ। वर्धा के सेठ बच्छराज के कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने वंश चलाने के लिए जमनालाल को गोद लिया और उसे वर्धा ले आए। उस समय में शिक्षा ने इतनी उन्नति नहीं की थी। मारवाड़ी अपने लड़को को गणित और लिखने योग्य हिन्दी की शिक्षा दिलाकर अपने व्यवसाय में लगा लेते थे। जमनालाल ने भी बहुत उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त की। अपने पिता से व्यापार की पूरी शिक्षा लेकर उन्होंने व्यापार में प्रवेश किया और अपनी योग्यता से साढ़े चार लाख की विरासत को 24 लाख तक पहुंचा दिया था। उस समय 50-60 रुपए में 1 (एक) तोला सोना मिल जाता था।

जमनालाल बजाज ने 1918 ई. में **''अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा''** की स्थापना की और वर्धा में एक सम्मेलन का आयोजन किया। जमनालाल का यह नियम था कि वे जिस बात को दूसरों को अपनाने को कहते थे तो पहले उसे स्वंय पर लागू करते थे। अग्रवाल सम्मेलन में उठे विवाद का समुचित उत्तर देने की दिशा में उन्होंने अपनी सुपुत्री का विवाह महात्मा गांधी के सान्निध्य में बड़ी ही सादगी से वर्धा के आश्रम में किया जिस पर उन्होंने 3500/-रू. खर्च किए। वैश्यों के वर्गीकरण को तोड़ने के लिए अपने पुत्र राधाकृष्ण का विवाह महेश्वरी समाज के श्रीकृष्ण प्रसाद जाजू की पुत्री से किया और विरोध करने वालों का मुंह बंद कर दिया। इससे अन्य लोगों पर प्रभाव पड़ा और रूढ़िता टूटने लगी।

जमनालाल बजाज में दो विरोधाभासी गुण पाये जाते थे। जहां वे महान् दानदाता कहे गये, वहीं उनको असीम मितव्ययी भी कहा जाता था।

सर जगदीश चन्द्र बोस को अनुसंधान में प्रयोग के लिए विज्ञान-शाला स्थापित करने के लिए 35,000/- रू. दिए। काशी विश्वविद्यालय को

पुस्तकालय के लिए 51,000/– रुपये दिए। जमनालाल बजाज को 'स्वाधीनता आन्दोलन का भामाशाह' कहा जाता है। इसे सिद्ध करने के लिए अनेकों प्रमाण है। 1917 में कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन, 1920 में नागपुर अधिवेशन और 1930 में नमक सत्याग्रह आदि के कार्यक्रम गाँधी जी ने बनाये थे पर उनको पूर्ण करने का भार जमनालाल पर छोड़ दिया था। उन पर उन्होंने कितना व्यय किया कोई नहीं जानता। गाँधी जी असहयोग आन्दोलन आरम्भ करना चाहते थे इससे पूर्व एक करोड़ रुपयों का कोष बनाने का निश्चय किया गया। इस कोष के लिए धन जुटाने काम जमनालाल बजाज के कंधों पर पड़ा। उन्होंने दो बार एक–एक लाख रू. इस कोष में दिए।

जमनालाल बजाज को 'संस्थाओं की संस्था' भी कहा गया। स्वाधीनता आन्दोलन में अपना कर्त्तव्य करते हुए, समाज सुधार और समाज सेवा के लिए उन्होंने अनेक संस्थाए स्थापित की इनमें सत्याग्रहाश्रम, महिला सेवा मंडल, मारवाड़ी सेवा मण्डल, कामर्स कालेज, गौसेवा चर्मालय, गौसेवा संघ, ग्राम उद्योग संघ, चरखा संघ, गाँधी सेवा संघ प्रमुख हैं। उनके संचालन का सारा खर्च स्वयं ही वहन करते थे।

जमनालाल बजाज एक अद्‌भुत और सटीक पारखी थे। 1915 में वे महात्मा गाँधी से अहमदाबाद के साबरमती आश्रम में मिलने गए। वहां उनसे अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर विचार–विमर्श हुआ। महात्मा गाँधी को जानने में उनको देर नहीं लगी। वे उनकी सादगी और नैतिक मूल्यों से प्रभावित हुए और उनका अनुयायी बनने का फैसला किया। बाद में वे पाचवें पुत्र कहलाए जिसे गाँधी ने भी स्वीकार किया। इसके पश्चात् जमनालाल बजाज ने कार्यकर्ताओं की एक पूरी टीम बना ली जो हर अवसर पर काम आई। कानपुर अधिवेशन से श्रीमन्नारायण को अपने साथ ले आए। जिसके साथ बाद में अपनी पुत्री मदालसा का विवाह किया।

जमनालाल बजाज अनुशासन के दृढ़ अनुयायी थे और सभी से अपेक्षा करते थे कि वे भी इसका पालन करें। जेल यात्रा में सदैव द्वितीय श्रेणी की जेल में रहे और उस श्रेणी में देय सुविधा ही प्राप्त करते थे। कांग्रेस पार्टी के लम्बे समय तक कोषाध्यक्ष रहे। उन्होंने जब भी पार्टी के काम में यात्राएं की, प्रथम श्रेणी के हकदार होते हुए, द्वितीय श्रेणी में ही जाते थे। कांग्रेस पार्टी ने मितव्ययता



का प्रस्ताव पारित किया तो उन्होंने नियम बना लिया कि वे 500/– रुपये प्रतिमाह से अधिक व्यय नहीं करेंगे जिसमें पत्र व्यवहार और रेल यात्रा का खर्चा भी शामिल था।

जमनालाल बजाज जैसा गांधीवादी शायद दूसरा हो। उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन को सच्चाई और पूरी लगन से चलाया। परिवार मे उपलब्ध सभी वस्त्रों की होली दो बार जलाई। साढ़ियों पर सोने और चांदी की किनारी और गोटे को भी नहीं रखने दिया। छूआछूत, स्पृशता निवारण और दलितोद्धार में अनुकरणीय काम किए। सबसे पहले एक हरिजनों को घर में रसोइये काम दिया। गांव के कुए को हरिजनों को पानी ले जाने के लिए खोल दिया। मारवाड़ी समाज के व्यक्तियों के विरोध के बावजूद जमनालाल बजाज ने अपना वर्धा में स्थित 'लक्ष्मीनारायण मंदिर' अछूतों के लिए खोल दिया। उन्होंने पहली बार उनकी संगति में पूजा अर्चना की। जमनालाल एक ऐसे व्यक्ति थे जिसके कितने ही खान भाई थे और कितनी ही मुस्लिम महिलाएं उनकी बहने थी। उन्होंने सर्व समर्थ होते समाज में रौब और उच्च स्तर के स्थान पर किंचन सेवक बनने का रास्ता चुना। आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद को अस्वीकार करना और अंग्रेज सरकार से 'राय बहादुर' की पदवी को ठुकराना इस प्रवृति के साक्षात् उदाहरण हैं। जमनालाल बजाज का हृदय बहुत कोमल और विशाल था। महात्मा गांधी के संसर्ग और कांग्रेस पार्टी की नीति के कारण स्वाधीनता आन्दोलन अहिंसक रहा। जमनालाल बजाज को इस बात का अहसास था कि क्रान्तिकारी कितने अभाव और विषम परिस्थितियों में देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करते हैं, इसलिए वे उनकी खुले दिल से आर्थिक सहायता करते थे। उन्होंने सरदार भगतसिंह को बचाने के लिए मुकदमें के दौरान वकीलों की लाखों रूपये की फीस का भुगतान किया। मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व जमनालाल बजाज 'गोपुरी' के पास ही पत्तों और फूस आदि से बनी कुटिया में रहने लगे थे। सात्विक और सादे जीवन के साथ गौ सेवा, गौरक्षा और गौसंवर्धन में पूरा समय लगाने लगे थे। जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में 'गो–सेवा–संघ' की स्थापना हुई तो उसके सभी काम काज की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ले ली। यही कार्य करते हुए 11 फरवरी 1942 को गोलोक वास हुआ।

# (6) राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त

**भारत सरकार ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के सम्मान में 3-7-1974 को 25 पैसे की मूल्य 30 लाख डाक टिकटें जारी की।**

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ल 2 सम्वत् 1943 तदानुसार 3 अगस्त 1886 को 3 अगस्त 1886 को उत्तर प्रदेश प्रान्त के जिला झाँसी के अन्तर्गत चिरगाँव में हुआ। उनके पिताजी सेठ रामचरण 'कनकलता' उपनाम से कविता लिखते थे इस प्रकार उनको काव्य-गुण विरासत में प्राप्त हुए। गुप्त जी आरम्भ में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने झाँसी शहर गये, परन्तु उस वातावरण में रम नहीं पाये और वापिस चिरगांव लौट आये। उनकी शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया गया।

घरेलू वातावरण से मैथिलीशरण की प्रवृत्ति काव्य सृजन की ओर झुकी और जो रचनाएँ की वे कलकत्ते से प्रकाशित जातीय पत्र में छपी। शीघ्र ही उनका सम्पर्क आचार्य द्विवेदी जी से हुआ जिन्होंने उनकी रचनाओं को बहुत पसंद किया और उचित मार्गदर्शन किया। इससे उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगी। मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी जी को अपना काव्य गुरू मानते थे। उनके गाँव के मुंशी अजमेरी जी साहित्य-जगत के प्रमुख व्यक्ति थे उनकी प्रेरणा से वे साहित्य सर्जन में लगे।

मैथिलीशरण गुप्त पर विद्वानों ने आलोचनात्मक और जीवन के विश्लेषण पर एक के बाद एक कई पुस्तकें लिखी हैं उनका जीवन सादा, उच्च और सात्विक विचारों वाला रहा। वे राय कृष्णदास की काशी में गंगा के किनारे स्थित कोठी में प्रायः जाया करते थे। यहाँ पर साहित्य पर विचार-विर्मश रात देर तक चलता रहता था। गुप्तजी को सभी 'दद्दा' कह कर पुकारते थे। वहाँ उपस्थित रचनाकारों में किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं होती थी। एक दूसरे में आपसी छेड़छाड़ चलती रहती थी। मैथिलीशरण का जीवन भिन्न था। उनके तीन विवाह हुए। इस प्रकार जीवन साथी के बिछुड़ने का सन्ताप सहन करना पड़ा, वहीं उनको प्रकृति ने सन्तान सुख नहीं दिया। उनके जीवित रहते उनके छोटे भाई सियाराम शरण गुप्त और बड़े भाई की मृत्यु हुई।



मैथिलीशरण गुप्तजी का रचना काल सम्वत् 1964 तदानुसार 1907 ई. से आरम्भ होता है उन दिनों में हिन्दी भाषा का संक्रामक काल था। लेखक तब फैसला नहीं कर पा रहे थे कि वे हिन्दी में संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक करें या अन्य भाषाओं जैसे उर्दू या फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग करें। गुप्त जी ने संस्कृत के तत्सम शब्द और ठेठ बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने रचना करते हुए विषय-वस्तु बड़ी सावधानी से चुनी। उन्होंने पुराने साहित्य के विषयों पर महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तककाव्य लिखे। उनके दो महाकाव्य 'साकेत' और 'जयभारत' साहित्य जगत को बहुमूल्य देन है। इनमें ऐतिहासिक कथाओं को आधुनिक वातावरण के अनुरूप चित्रित किया गया है। साकेत महाकाव्य में आधुनिक नारी की भांति लक्ष्मण का राम के साथ वन में प्रस्थान के पश्चात उर्मिला की विरह वेदना स्थिति का वर्णन बड़ा ही मार्मिक है वहीं 'पंचवटी में शूर्पणखा में भौतिक सुख और निर्लज्जता का विवरण है। गुप्त जी ने उद्बोधक काव्य चम्पू, रूपक, नाटय-गीति के साथ कई अनुदित काव्य भी लिखे। मैथिलीशरण गुप्त के काल में राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी और उनके दर्शन का बोलबाला था। इस कारण गांधीवाद का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारत भारती में देश प्रेम, हिन्दू और मुसलमान दोनों के उद्धार की बात कही गई। गुप्तजी धर्म के विषय में उदारवादी थे। जहाँ हिन्दू समाज को बाल-विवाह, अछूतोद्धार आदि कुरीतियों को त्याग देने के लिए उदबोधन किया, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सिक्ख और बौद्ध आदि सभी को संगठित होकर कर्तव्य पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। मुसलमानों में सामाजिक चेतना जाग्रत करने के लिए "काबा और कर्बला" की रचना की "अर्जन और विसर्जन" में उन्होंने ईसाई-संस्कृति का भी उद्घाटन किया। गुप्तजी ने प्रबन्ध शैली, रूपकशैली और गीति-काव्य शैली में रचना की। छन्दों में हरिगीतिका छंद सर्वाधिक प्रिय था। उनके काव्यों में श्रृंगार, करूण, शांत रस प्रचुर मात्रा में है। उनकी रचनाएं अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक उपमा, भ्रांति, श्लेष रूपकातिश्योक्ति अलंकारों से सजी है। गुप्तजी की रचनाओं का भंडार विशाल है। पाठकों को उपरोक्त संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

मैथिलीशरण गुप्त अपनी रचनाओं में शब्द रूप से ही गांधीवादी नहीं थे। सन् 1951 ई. में आचार्य विनोबा भावे चिरगांव आये थे। गुप्तजी के नेतृत्व में सारा गांव उनकी अगवानी करने के लिए दूर तक गया। उस दिन सन्ध्या के समय जो सभा हुई, उसमें उन्होंने कोई सौ एकड़ जमीन भूदान यज्ञ में विनोबा जी को दी। श्री दिनकर ने गुप्त जी को कालयज्ञपुरूष कहा है, भारत सरकार ने मैथिलीशरण

गुप्त की हिन्दी साहित्य की सेवा के आधार पर राज्य सभा में नामित किया। गुप्त जी जब भी राज्यसभा में बोले काव्य के मुखडों में बोले। वे ऐसे मुखड़े कई बार साधारण वार्तालाप में भी बोल देते थे। मैथिलीशरण गुप्त में हिन्दी भाषा के प्रति अगाध और अथाह प्रेम था वे अपनी रचना में बुन्देलखण्डी और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग तो कर लेते थे परन्तु अन्य भाषा का कोई स्थान नहीं था। एक बार बालस्वरूप राही गुप्त जी से दिनकर जी के साथ मिले थे तब वे बोल उठे थे'' अब यही गड़बड़ है। आपने अपना उपनाम 'राही' क्यों चुना, बटोही क्यों नहीं। जब 1963 में संसद में भाषा संशोधन विधेयक आया था तब उन्होंने उसका कड़ा विरोध किया था। गुप्त जी वैष्णव वृति के ही नहीं, खालीस हिन्दूत्व के कवि थे। जब राहुल साँकृत्यानन ने अपने खान-पान में मीट-मांस आदि का वर्णन किया तो एक पद लिखकर उनकी भर्त्सना की थी। मैथिलीशरण गुप्त इस प्रकार पूरे जीवन देश, धर्म और साहित्य की सेवा करते रहे उनका देहान्त 8 जनवरी 1964 को अचानक हो गया। एक मुर्धन्य साहित्यकार हिन्दी साहित्य जगत ने खो दिया।



## (7) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

**भारत सरकार ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के सम्मान में 9 सितम्बर (उनके जन्म दिवस पर) 1976 को 25 पैसे मूल्य की 30 लाखडाक टिकटें जारी की।**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर 1850 में उनके ननिहाल में हुआ था। उनके पिताजी का नाम गोपाल चन्द्र और माता जी का नाम मुकुन्दी बीबी था। उनकी माताजी का देहान्त 1855 में हुआ। हरिश्चन्द्र महान् साहित्यकार, देशभक्त ओर समाजसुधारक थे। वे मात्र 34 वर्ष और 4 मास जीवित रहे। उनकी शादी 13 वर्ष की आयु में मन्नीदेवी से हुई। हरिश्चन्द्र का परिवार बनारस का धनवान और ख्याति प्राप्त परिवार था। उनके पिताजी काशी नरेश के खजान्ची ही नहीं वरन् साहूकार भी थे। समय-समय पर उनको रूपया-पैसा उधार दिया करते थे। गोपाल चन्द्र एक अच्छे लेखक भी थे और ''गिरधर'' उपनाम से लिखते थे। 13 वर्ष की आयु में रामायण का अनुवाद किया। छोटी बड़ी लगभग 40 (चालीस) रचनाएं प्रकाशित हुई थी। उनकी मृत्यु दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और गोकुलचन्द्र के यज्ञोपतीत उत्सव पर अधिक भांग के सेवन के कारण हुई।

हरिश्चन्द्र के समय में शिक्षा का विकास नहीं हुई था। प्रारम्भिक शिक्षा साहुकारों द्वारा संचालित पाठशाला में हुई। उसमें संस्कृत, उर्दू, फारसी भाषा के साथ गणित भी पढ़ाया गया। तत्पश्चात क्वीन्स कालेज में अध्ययन किया। वे पढ़ने में बहुत तेज थे। एक बार जिस अध्याय को पढ़ लेते थे कण्ठस्थ हो जाता था। हश्चिन्द्र को लेखन की कला अपने पिताजी से विरासत में मिली थी। उन्होंने 13 वर्ष की आयु में लिखना शुरू किया था। हरिश्चन्द्र ने 11 (ग्यारह) वर्ष की आयु में ''स्वर्गवासी अनवरत वर्णन अन्तर्लापिका'' की रचना की। उन दिनों उर्दू का बोलबाला था। हिन्दी भाषा में या तो उर्दू के शब्द या संस्कृत के शब्द प्रयुक्त होते थे। हरिश्चन्द्र ने इस सब से हटकर ''खड़ी बोली'' के विकास में महान योगदान किया। उस समय 9 (नौ) रसों के साहित्य में होने की व्याख्या थी। उन्होंने उनके अतिरिक्त 5 (पाँच) अन्य रसों का उल्लेख किया।

हरिश्चन्द्र ने लिखना आरम्भ किया तो निरन्तर रूप से लिखते रहे। उन्होंने हर विधा और हर शैली में लिखा। अपनी अल्पायु में 20 नाटक, 8

आख्यायिकाएें, 28 काव्य अथवा कवितां संग्रह, 7 स्त्रोत, 8 अनुवाद या टीका, 18 रस सम्बन्धी रचनाएं हिन्दी साहित्य को प्रदान की। अग्रवाल समाज की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "**अग्रवालों की उत्पत्ति**" नाम से वंशावली की रचना करके महान सेवा की। यह ग्रन्थ प्रमाणिक और सत्य माना जाता है। "खत्रियों की उत्पत्ति" लिखकर अन्य समाज की भी सेवा की। भारतेन्दु ने अन्य भाषाओं का मुकाबला लेने और हिन्दी भाषा के विकास के उद्देश्य से "कवि वचन सुधा" साप्ताहिक पत्र की स्थापना की। यह पत्र लोगों में बहुत लोकप्रिय हुआ। इसमें लगभग सभी समकालीन साहित्यकार और सामाजिक नेता लिखते थे। सामग्री में प्रधान लेख, दो चार टिप्पणियाँ, पाँच-दस छोटी खबरें, अंग्रेजी में Summary of News,हिन्दी में समाचारवली, हास्यरस के लेख आदि इस सभी को एक साथ नियम से छाप कर हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा दी। लिखने की गति इतनी तीव्र थी कि "अंधेर नगरी-चौपट राजा" नाटक एक दिन में ही पूरा लिखा था। हरिश्चन्द्र में राष्ट्रीयता और देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने अनुवादित पुस्तकों में पात्रों के नाम बदलकर भारतीय नाम प्रदान किये। वे ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध लिखने से भी नहीं चूके।

अंग्रेज सरकार ने उनको कोई उपाधि या पुरस्कार नहीं दिया। "भारतेन्दु" साहित्यकारों और पाठकों द्वारा सम्मान में सर्वाधिक स्वीकृत उपाधि है। महिलाओं की शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने कहा "यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश में कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियाँ भी शिक्षित न होगी। क्योंकि यदि पुरूष विद्वान और पंडित होवेंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख होंगी तो उनमें आपस में स्नेह न होगा और नित्य कलह ही होगा।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन माता-पिता की मृत्यु के कारण दुखमय था। उनकी आदत, शौक, समाज में चलन, रंगीन रहा। पान बहुत खाते थे। सुना है कि उन्होंने एक बार एक दिन में 700 (सात सौ) पान खाये थे। इत्र का प्रयोग खुलकर करते थे और उपहार में भी देते थे। यह कहा जाता था कि उनके पास इतना इत्र था कि यदि इत्र के दीपक जलाये तो महीनों तक समाप्त नहीं होता।

भारतेन्दु का देहान्त 5 जनवरी 1885 को हुआ। आप अपने पीछे एक सुपुत्री विद्यावती और धर्मपत्नी मन्नोदेवी को छोड़ गये। साहित्यकारों का मानना है कि यदि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी पूरी आयु जीवित रहते तो वे हिन्दी जगत को शेक्सपीयर से भी अधिक कृतियाँ प्रदान करते। यह वास्तव में अपूरणीय क्षति है।



# (8) महाराजा अग्रसेन

**भारत सरकार ने अग्रवाल समाज के आदर्श युग पुरूष महाराज अग्रसेन के सम्मान में 24-9-1976 को 25 पैसे मूल्य की 80 लाख डाक टिकट जारी की। जो उस समय तक जारी टिकटों में सर्वाधिक थी।**

महाराजा अग्रसेन अग्रवाल परिवारों के लिए युग पुरूष ही नही वरन् एक इष्टदेव है। द्वापर और कलयुग का सन्धिकाल लगभग 5160 वर्ष पूर्व हुआ था। उनके जन्म से कालगणना इस ईस्वी वर्ष 2013 में 5137 वाँ वर्ष है जिसे अग्रसेन वर्ष भी कहते है। उस वर्ष के अश्वनी मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को रविवार के दिन मध्याह्न समय के महेन्द्र काल के शुभ मुहूर्त में उनका जन्म हुआ। इसलिए वे सूर्यवंश से हैं और इस दिन हर वर्ष 'अग्रसेन जयन्ती' मनाई जाती है। ज्योतिष के अनुसार इस काल में जन्म लेने वाला बालक बहुत यशस्वी और पराक्रमी होता है।

महाराजा अग्रसेन के पिताजी का नाम वल्लभसेन तथा माताजी का नाम भगवती था। वल्लभसेन सुर्यवंशी इक्ष्वाकु कुल के वृहतसेन के वंश से थे। माता भगवती विदर्भ की थी जहाँ से भगवान श्रीकृष्ण की रानी रूकमणी भी थी। वल्लभसेन प्रतापपुर के राजा (नायक) थे जो तीनों ओर नदियाँ से घिरा था।

किशोरावस्था में अग्रसेन जी को मालवा निवासी ताँडव्य ऋषि के आश्रम में विद्या-अर्जुन, शस्त्र-अस्त्र विद्या और धार्मिक ग्रन्थों के ज्ञान के लिये भेजा गया। उनके आश्रम में ही अग्रसेन की 14 वीं वर्षगाँठ मनाई गई। उसी समय कौरव-पाडवों में युद्ध में शामिल होने का निमन्त्रण मिला। जिसको स्वीकार कर लिया गया।

अग्रसेन अपने पिताजी के साथ युद्ध में शामिल होना चाहते थे। छोटी आयु होने के कारण वल्लभसेन ने स्वीकार नहीं किया। आग्रह करने पर अपनी माता भगवती से अनुमति प्राप्त करने की शर्त लगा दी। युद्ध में जाने से पूर्व, शासन कार्य का भार अपने छोटे भाई कूंदसेन को सौंप दिया। युद्ध में अग्रसेन अपने पिता वल्लभसेन के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर लडे। परन्तु दुर्भाग्य से युद्ध के 9 वे दिन प्रतापी भीष्म के वाणों से घायल होने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये। भगवान श्रीकृष्ण अग्रसेन से मिले। उनकी वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा

करते हुए सान्तवना दी और उन्हें अपने राज्य वापिस भेज दिया।

अग्रसेन ने प्रतापपुर में आकर लोक सम्बन्धी सभी कर्म-अनुष्ठान विधिवत् सम्पन्न किये। तत्पश्चात् पुरोहितों, ऋषियों, पंडितों की मंत्रणा से अग्रसेन को राजगदी पर बैठाने का निर्णय हुआ। जब अग्रसेन के राज्यारोहण का समय आया तो कूंदसेन का पुत्र वज्रसेन कुपित हो उठा। उसने अपने पिताजी को सलाह दी कि अग्रसेन को मारकर वह स्वयं राज्य करें। कूंदसेन भी सत्ता छिन जाने के भय से दुखी था। उसने छल करके राजमहल में सोये अग्रसेन को बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया। अग्रसेन ने उसी को राज्य करते रहने और उसे छोड़ देने की विनती की परन्तु वह नहीं माना। राज्य का एक अमात्य उसके पिता वल्लभसेन का हितैषी था। उसने अग्रसेन को मुक्त करके सुरंग द्वारा जंगलों में भेज दिया और स्वयं कुंदसेन के सैनिकों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

कुंदसेन ने अग्रसेन का पीछा किया। जिस जंगल में अग्रसेन छिपे थे उसमें आग लगवा दी। अग्रसेन को मरा हुआ जान वह अपने राज्य वापस लौट गया। जंगल में गुफा थी उसमें छिपकर अग्रसेन ने अपने प्राणों की रक्षा की। उसी समय अग्रसेन के फूफा अनंगपाल ने अग्रसेन जी को सब भाँति से सहयोग दिया। उनके सहयोग से वे वहाँ से तुरंत कूच कर गये क्योंकि कुंदसेन पुनः आकर उन्हें मारने की चेष्टा कर रहा था। अग्रसेन जी जैसे ही गुफा से बाहर आये कुंदसेन और वज्रसेन के सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में अनंगपाल शहीद हो गए। अग्रसेन ने कुंदसेन को पकड़कर उसका हाथ काट डाला। कुंदसेन अपनी जान बचाकर भाग गया।

युद्ध से क्लांत अग्रसेन अज्ञात दिशा की ओर चल पड़े। चलते-चलते वे नदी पार कर प्रतापपुर की सीमा को त्याग बीहड़ वन में समतल मार्ग पर आ गए। वहीं एक शिला पर बैठकर विश्राम करने लगे। वह भूमि किसी के अधीन नहीं थी। वहाँ गर्ग ऋषि का आश्रम था। समिधा लेने आए गर्ग मुनि के शिष्यों ने जाकर अग्रसेन के बारे में सूचना दी। गर्ग मुनि वहाँ आए और अग्रसेन जी को समझा-बुझाकर अपने साथ ले गये और आश्वस्त किया कि "मैं ऐसा उपाय करूँगा कि तुम पूरे देश में पूज्यनीय हो जावोगे।" वहाँ तप कर रहे अनेक ऋषि-मुनियों ने अग्रसेन जी को आर्शीवाद दिया। गर्ग मुनि ने अग्रसेन जी को सुरथ और समाधी वैश्य की कथा सुनाई जिन्हें मेघा मुनि ने देवी की अराधना करने की प्रेरण दी थी। जिस तप को करने के बाद सुरथ को उसका खोया हुआ राज्य मिला गया और समाधी को मोक्ष की प्राप्ति हुई। वह अपनी पत्नी-पुत्रों द्वारा राज्य से निष्कासित किया गया था अतः उसने देवी की अराधना अपने मोक्ष के लिए की थी। गर्ग मुनि ने कहा-अग्रसेन त्रिगुणमयी परम ईश्वरी (मूलप्रकृति) महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण है। तुम उन्हीं की अराधना करो वे ही तुम्हें राज्य वैभव संपन्न करेगीं।



उसी वन में अग्रसेन ने महालक्ष्मी की कठोर तपस्या की। महालक्ष्मी उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गई और अग्रसेन जी को आर्शीवाद प्रदान करती हुई बोली, "प्रिय वत्स तुम्हारी सभी मनोकामना पूर्ण होगी।" वरदान से आपूर अग्रसेन गर्ग मुनि के पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर महालक्ष्मी के वरदान की बात कही। तब गर्ग मुनि ने उन्हें पराक्रम द्वारा अपनी कीर्ति स्थापित करने के लिए प्रयत्न करने का आदेश दिया और कहा इसी भूमि पर महाराज मरूत ने सौवा यज्ञ पूर्ण किया था। इतना धन सोना आदि दान किया था कि वे अपने साथ नहीं ला सके। वह यहाँ पृथ्वी के अन्दर गड़ा है। तुम उसे ग्रहण कर नए राज्य की स्थापना करो। गर्ग मुनि ने कहा-मेरे आश्रम के समीप मरूप्रदेश की वह भूमि है जो बालू से परिपूर्ण तथा पश्चिम दिशा में फैली हुई है, तुम इसी भूमि पर राज्य करो। यह कहकर उन्होंने उस भूमि पर महाराज अग्रसेन का राजतिलक कर दिया। अग्रसेन जी ने इसके बाद भगवान शंकर की अराधना की और उस भूमि से अपार धनराशि एकत्रित कर उसी बालू और वन से परिपूर्ण स्थान पर एक पुरी का निर्माण कराया जिसका नाम 'अग्रेय' रखा।

अग्रोहा राजधानी अग्रसेन को बहुत भाग्यशाली रही। इसमें लगभग एक लाख समृद्ध और वैभवशाली परिवार रहते थे। यहाँ से ही अग्रसेन ने समता और समानता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। यदि कोई दीन और विपन्न व्यक्ति अग्रोहा में आकर बसता था तो उसको यहाँ के निवासी एक रूपया और एक ईट देकर सहयोग देते थे। इससे वह ईट का प्रयोग करके घर बना लेता और रूपयों से व्यवसाय करके जीवन-बसर करने लगता। व्यापार में हानि या अन्य कारणों से किसी परिवार को आर्थिक तंगी हो जाती तब भी इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक परिवार एक ईट और एक रूपया देता था इस प्रकार वहाँ रहने वाले परिवारों में समानता और समग्रता थी।

इसके बाद गर्ग मुनि के आदेशनुसार, अग्रसेन नाग लोक के राजा महिधर की कन्या माधवी से विवाह के लिए नागलोक (मणिपुर) चल पड़े। गर्ग मुनि ने उन्हें अपने सखा उद्दलक मुनि का परिचय देते हुए बताया कि वे वहाँ सहायक बनकर नागलोक में तुम्हारा प्रवेश कराने में सहयोग देगें। नागराज महिधर ने अपने महल में विशाल स्वयंवर का आयोजन किया जिसमें देवेन्द्र इन्द्र सहित अनेक राजकुमार और नाग कुमारों ने भाग लिया। राजकुमारी माधवी सर्वगुण सम्पन्न और अपूर्व सौन्दर्य शाली युवती थी और देवेन्द्र इन्द्र उससे विवाह करना चाहता था। परन्तु राजकुमारी माधवी माधवी ने वरमाला अग्रसेन के गले में डाल दी और दोनों का विवाह हो गया।

इस घटना से देवेन्द्र इन्द्र ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया और बदला लेने के उद्देश्य से अग्रसेन के राज्य में वर्षा नहीं होने दी। खड़ी फसल को आग

लगवा दी। तब गर्ग मुनि ने अग्रसेन को महालक्ष्मी की पुनः तपस्या करने का आदेश दिया। घोर तपस्या से महालक्ष्मी ने अग्रसेन को पुनः दर्शन देकर देवेन्द्र इन्द्र के भय से मुक्ति-प्रदान की।

**अग्रसेन अग्रवाल समाज के संगठन थे। वे इस समाज के जनक नहीं थे।**

अग्रसेन ने प्रजा को वैज्ञानिक और धार्मिक अनिवार्यता के आधार पर व्यवस्थित किया। उन्होंने इसे 18 (अठारह) श्रेणियों में विभक्त किया, हर श्रेणी को पृथक नाम दिया, जो बाद में कुल कहलाये। उनके नाम गोत्र कहलाये। वैभव और गौरव को उच्चता देने के लिए उन दिनों वंशाकार यज्ञ किये जाते थे। महाराजा अग्रसेन सभी यज्ञों में अधिष्ठाता बनें। ब्रह्मा का आसन गर्ग मुनि ने ग्रहण किया। अग्रोहा गणराज्य 18 श्रेणियों/कुलों में विभक्त था। प्रत्येक गण का प्रतिनिधि यजमान बनकर शामिल होता था। अग्रसेन इन महान यज्ञों को करवाने के लिये महान विद्वान ऋषि को बुलाकर पुरोहित का दर्जा देते थे। श्रेणी/कुल के प्रतिनिधि यज्ञ के पूर्ण होने के पश्चात ऋषि के नाम को उपाधि मानकर धारण कर लेते थे। महाराजा अग्रसेन ने 18 प्रतिनिधियों से 18 वंशाकार यज्ञ 18 ऋषियों से करवाये। इस प्रकार अग्रवाल समाज में 18 विभाजन है जिनकों 18 गोत्र कहते है। गर्ग ऋषि से गर्ग गोत्र, गोभिल ऋषि से गोयल, कश्यप ऋषि से कुच्छल, कौशिक ऋषि से कंसल, वशिष्ट से बिन्दल, धौम्य से धारण, शाण्डिल्य से सिंघल, जैमिनी से जिन्दल, मैत्रय से मित्तल, ताण्डव से तिंगल, तैतिरेय से तायल, वत्स से बंसल, धन्यास से भंदल, नागेन्द्र से नागल, मांडव्य से मंडल, और्व से ऐरण, मुद्गल से मधुकुल और गौतम से गोयन गोत्र स्थापित हुए।

प्रचलित धार्मिक व्यवस्थाओं के अनुसार ऐसे यज्ञों में क्षत्रिय राजा द्वारा पशुबलि देने का विधान था। महाराजा अग्रसेन ने 17 (सत्रह) यज्ञ तो पशुबलि देकर पूर्ण करवाये। अन्तिम और अठारवें यज्ञ के दौरान उनको पशुबलि से घृणा हो गई। उस यज्ञ को अन्य वस्तुओं नारियल, अन्न प्रसाद आदि से पूर्ण करने के लिए उन्होंने अपने क्षत्रिय वर्ण का त्यागकर वैश्य वर्ण धारण किया। इतिहास के अनुसार महाराजा अग्रसेन क्षत्रिय भगवान राम के पुत्र कुश के कुल से थे। तब से उन्होंने अपने राज्य में जीव-हत्या निषिद्ध की और अहिंसा धर्म का पालन किया।

महाराजा अग्रसेन ने धार्मिक और वैज्ञानिक आधार को मजबूती देने के उद्देश्य से एक ही गोत्र में विवाह करना निषेध किया। यह रक्त शुद्धि के लिये विज्ञान भी लाभदायक मानता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर अग्रसेन के अठारह पुत्र होना और उनमें परस्पर विवाह होना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता है। इसलिये विवाह अन्तर्गौत्र में उपयुक्त है। कुछ अग्रवाल परिवारों ने अपने निवास स्थान या व्यवसाय के शब्द नाम के साथ लगाने आरम्भ कर दिये हैं। परन्तु उनके गोत्र उन 18 गोत्रों में से ही हैं।



# (9) सर गंगाराम

**भारत सरकार ने सर गंगाराम के सम्मान में 4-9-1977 को 25 पैसे मूल्य की 30 लाख डाक टिकटें जारी की।**

सर गंगाराम का जन्म 13 अप्रैल, 1851 को पंजाब प्रान्त के मंगतवाला (इन दिनों पाकिस्तान देश में) में हुआ था। इनके पिता दौलतराम मूलतः उत्तर प्रदेश प्रान्त के निवासी थे। कुछ समय बाद अमृतसर आकर रहने लगे और जिला न्यायालय में नकल-लेखक की नौकरी से जीवन-यापन करने लगे।

गंगाराम की प्रारम्भिक शिक्षा अमृतसर में स्वर्ग मंदिर के पास प्रोइवेट स्कूल में चार वर्ष की आयु में शुरू हुई। कुछ समय के बाद उन्हें कटरा अहलुवालिया की दूसरी पाठशाला में भेजा गया। गंगाराम वहाँ शिक्षा ग्रहण करने में बहुत कुशाग्र रहे और कुछ कक्षाएं एक वर्ष में दो उत्तीर्ण की। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा दी जिसमें वे विफल रहे। दूसरी बार उन्होंने अमृतसर के राजकीय हाई स्कूल से परीक्षा दी और सफल हो गये। 1869 ई. में उन्होंने लाहौर राजकीय कालेज में प्रवेश लिया।

गंगाराम ने अभियन्ता बनने के लिए 1871 में रूड़की नगर में स्थित टोमसन इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश प्राप्त किया। यहाँ वे 50 रुपये छात्रवृत्ति में से 25 रुपयें महीने खर्च करते और 25 रुपये अपने पिता दौलतराम को भेज देते। इससे वे निश्चिन्त होकर पूजा-पाठ में समय बिताने लगे। गंगाराम ने 1873 में इंजीनियर की फाइनल परीक्षा सारे विश्वविद्यालय में तीसरा स्थान लेकर पुरस्कार में स्वर्णपदक प्राप्त करके उत्तीर्ण की।

गंगाराम की नियुक्ति सरकार के लोक निर्माण में 150 रुपये मासिक वेतन पर हुई। वरिष्ठ अभियन्ता को 1000 रुपये मासिक वेतन मिलता था। गंगाराम की पहली नियुक्ति गुरदासपुर डिवीजन हुई में दो वर्ष बाद बदली डेरा गाजी खाँ में हुई वहाँ पर उनका सम्पर्क सर रोबर्ट सैंडविन जिलाधीश से हुआ। लाहौर नगर में प्रिन्स ऑफ वेल्स का आगमन होने वाला था। उस अवसर के लिए विस्तृत निर्माण की योजना बनी, जिसके लिए योग्य इंजीनियर की तालाश हुई। जिलाधीश सर रोबर्ट सेंडविन की सिफारिश पर उस काम का उत्तरदायित्व गंगाराम को सौंपा गया। इस कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने पर गंगाराम की

ख्याति पूरे विभाग में हो गयी। दिल्ली दरबार, कांगड़ा घाटी में टेढ़ी-मेढ़ी और चढ़ती उतरती पहाड़ियों में रेलवे लाइन के बिछाने का काम पूरा किया। उन दिनों में देश के नगरों में पेयजल और ड्रेनेज की व्यवस्था नहीं के बराबर थी। इस क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए गंगाराम को ब्रेडफोर्ड में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। वापिस आने के बाद सरकार ने पेशावर की जल-योजना तैयार करवाई। उन्होंने अम्बाला, करनाल और गुजरावाला की पानी की समस्या का समाधान कर अपार ख्याति प्राप्त की। उनको लाहौर नगर का एक्जीक्यूटिव इंजीनियर बनाया गया। 12 वर्ष तक कार्य किया और पूरे लाहौर की कायाकल्प ही कर दी। अनेक दर्शनीय भवनों का निमार्ण करवाया। दिल्ली में सन् 1900 में एडवर्ड अष्टम के राजगद्दी पर बैठने के उपलक्ष्य में दरबार के आयोजन के लिए विशाल और विस्तृत निर्माण करवाये। सन् 1903 ई. में गंगाराम को सेवा निवृत्ति मिली। उनकी निपुणता और विशेषज्ञता की धाक के कारण पटियाला के महाराजा ने उन्हें अपनी रियासत में निर्माण कार्यों के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने यहाँ भी नयनाभिराम भवनों का निर्माण करवाया।

पटियाला में सात वर्ष सतत कार्य करने के बाद गंगाराम अपने सुपुत्र सेवकराम के साथ इंग्लैंड गये। वहाँ से लौटे तो 1911 में इम्पीरियल दरबार की तैयारी के लिए वायसराय लार्डकर्जन ने विशेष रूप से निर्माण कार्य उनको सौंपा। गंगाराम की आयु 70 वर्ष की हो गयी थी। परन्तु उनकी विशेषता, उनकी गणान्वेषक विशेषता, निर्माण में गुणवत्ता आदि गुण उनका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। निर्माण में हर प्रकार की रुकावट का निवारण वे सहजता से कर लेते थे। दिल्ली में निर्माण कार्य के इस कार्य में निर्माण सम्बन्धित कई पेचदगियाँ आई। वाइसराय ने बीच में ही अचानक परिवर्तन किये। पर गंगाराम ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने उनको मूर्तरूप दिया।

ब्रिटिश सरकार ने गंगाराम की सेवाओं के प्रतिफल में चेनाब नदी के क्षेत्र में उपहार स्वरूप 20 टुकड़े जमीन के दिये थे। जो ऊँची नीची और उसर थी जिनको वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग से उपजाऊ बनाकर ख्याति प्राप्त की।

पहले महायुद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से शत्रुओं से रक्षा के लिए सेना की आवश्यकता हुई। भारतीय नौजवानों को सेना में भरती होने के लिए अन्य लाभ इतने आकर्षक नहीं लगे, जो उनको वापिस आने पर कृषि योग्य जमीन का अलाटमेन्ट था। देश में जमीन तो बहुत थी परन्तु उसको कृषि योग्य बनाना एक जटिल समस्या थी। इस समस्या का निवारण ब्रिटिश साम्राज्य को



गंगाराम में नजर आया। उन्होंने एक बड़ा जमीन का टुकड़ा उनको दिया जिसको गंगाराम ने कृषि योग्य और उपजाऊ बनाकर शासन को दे दिया। इससे खुश होकर ब्रिटिश साम्राज्य ने उनको ''नाइट'' की पदवी से विभूषित किया। गंगाराम ने स्वालम्बन से जीवन की सभी सुख-सुविधा, मान-सम्मान और ख्याति प्राप्त की। उन्होंने दीन और विपन्न लोगों की सेवा में तन-मन और धन लगा दिया। वे बाल-विवाह को समाज की प्रत्येक बुराई की जड़ मानते थे। इस प्रथा के कारण बालिकाओं को छोटी और अबोध आयु में वैधव्य का जीवन व्यतीत करने को मजबूर होना पड़ता था। इस बुराई को समाप्त करने के लिए गंगाराम ने 'विडोज काज' (widow's Cause)पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। उन्होंने 'बाल विधवा' के सुधार के लिए प्रतिदिन एक विवाह कराने का संकल्प लिया जिसे उन्होंने पूरा भी किया। 'विधवाश्रम भी स्थापित किया।

शिक्षा को गंगाराम बहुत महत्व देते थे। इसके लिए उन्होंने लाहौर में मालरोड पर स्थित एक भवन सरकार को दान में दिया। इसी क्रम में मदन मोहन मालवीय की बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भवनों के निर्माण में नि:शुल्क कार्य किया और एक लाख रूपये की बड़ी रकम देकर अनुदान भी दियां। गंगाराम की धार्मिक प्रवृत्ति उनकी गो-सेवा से प्रतीत हाती है। अपने फार्म में विदेशों से अधिक दूध देने वाली गऊएं मंगवाकर उनका पालन किया।

सर गंगाराम समाज में सुधार लाने के लिए एक क्रान्ति लाना चाहते थे। इस ध्येय से उन्होंने उसके हर पहलू के दोष को छुआ और संस्था बनाकर कार्य किया। 'लेड़ी मेनयार्ड इंडस्ट्रीयल स्कूल फोर हिन्दू एण्ड सिख स्थापित किया। 1923 ई. में उन्होंने 'सर गंगाराम ट्रस्ट' की स्थापना की जिसके आधीन उन्होंने अपने कई भवन और सम्पत्ति अर्पित कर दी जिनकी कीमत उन दिनों लगभग 30 लाख रुपये थी और 25 हजार रुपये की वार्षिक आय थी। लाहौर में ''सर गंगाराम चैरीटेबल डिस्पेंसरी'' की स्थापना की। सर गंगाराम सच्चे वैश्य अग्रवाल मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने उपरोक्त विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से लाखों रुपये दीन और दुखियों के कल्याण पर खर्च किये। एक अपाहिज आश्रम स्थापित किया। परन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सादा रहा। वे एक ही पलंग पर 46 वर्ष तक सोये। सर गंगाराम ने अपने वैश्य अग्रवाल समाज के लिए भी काम किया। 1892 में वैश्य महासभा की अध्यक्षता की जिसमें समाज के सुधार और विकास पर विस्तृत चर्चा की गई। इसकी 100 वीं वर्षगांठ पर मेरठ नगर में 1992 में समारोह किया गया।

तत्कालिन सरकार पर सर गंगाराम की योग्यता, अनुभव और विशेषता की पूरी धाक थी। भवन निर्माण संबन्धित कार्यों में आज भी उनकी दी हुई विशेषता का प्रयोग किया जाता है। सरकार को देश के किसी भी क्षेत्र में कोई सुधार लागू करना होता तो सर गंगाराम से अवश्य परामर्श लिया जाता था। भूमि पर लगान और कृषिक समस्याओं के समाधान के लिए उनको रायल एग्रीकल्चरल कमीशन में भारतीय सदस्य नियुक्त किया गया। इसकी एक बैठक इंग्लैंड में बुलाई गई, जिसकी अध्यक्षता लार्ड लिनलिथयगो ने करनी थी। सर गंगाराम भी उस मीटिंग में भाग लेने गये थे और वे वहाँ लंदन में रूके थे। अचानक 10 जुलाई, 1927 को उनका देहावसान हो गया था। उनकी अन्त्येष्टि वहाँ पर ही 'गोल्डन ग्रीन क्रिमेटोरियम' में की गई। कुछ भस्मी हरिद्वार गंगा में प्रवाहित की गई कुछ को लाहौर में उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं में दर्शनार्थ रखी गई।



# (10) डॉ. राममनोहर लोहिया

**भारत सरकार ने डॉ. राम मनोहर लोहिया के सम्मान में 12-10-1977 को 25 पैसे मूल्य की 30 लाख तत्पश्चात् 23-3-1997 को पुनः 1 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

• डॉ. लोहिया का जन्म 23 मार्च 1910 ई. को उत्तर प्रदेश प्रान्त के जिला फैजाबाद के गाँव अकबरपुर में हुआ। उनके पिताजी का नाम हीरालाल लोहिया था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। कलकत्ता के विद्यासागर कालेज से बी.ए. की परीक्षा 1929 में उत्तीर्ण की। डॉ. राममनोहर लोहिया की योग्यता और पात्रता को देखते हुए, कलकत्ता की अग्रवाल सभा ने उनको विदेश में आगे शिक्षा प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा। डॉ. लोहिया जानते थे कि उनके देश पर ब्रिटिशों का राज्य है और वे किस प्रकार शोषण और अत्याचार करके इंग्लैण्ड पैसा भेज रहे हैं। इस कारण से डॉ. राममनोहर लोहिया ने इंग्लैण्उ जाकर आई.सी.एस. या कोई उच्च शिक्षा प्राप्त करना अस्वीकार कर दिया। डॉ.राममनोहर लोहिया के प्रखर देश प्रेम का यह पहला उदाहरण था। डॉ. लोहिया इंग्लैण्ड के स्थान पर जर्मनी गये और 1932 ई. में हम्बोल्ट यूनिवर्सिटी से ''नमक और सत्याग्रह'' विषय पर पी.एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। 1933 में स्वदेश लौट आये।

डॉ. राममनोहर लोहिया राष्ट्र सेवा के उद्देश्य से आजीवन अविवाहित रहे। वे पक्के गांधीवादी थे। उन्होंने महात्मा गांधी के प्रत्येक स्वाधीनता संग्राम के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया और लगभग 40 (चालीस) बार जेल गये। दूसरे विश्व युद्ध में ब्रिटिश शासन द्वारा भारत को भी घसीटा गया तो उन्होंने इसका विरोध किया। वे प्रचार के महत्त्व को जानते थे। उन्होंने गुप्त रेडियो स्टेशन स्थापित किया जो अंग्रेज सरकार द्वारा पकड़ा गया। स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद महात्मा गाँधी ने कांग्रेस पार्टी को समाप्त करके अपनी अलग पार्टी बनाने की सलाह दी। डॉ. लोहिया ने इसका पूर्ण समर्थन किया। कांग्रेस पार्टी से सदा के लिये नाता तोड़कर 1952 में प्रजा सोसलिस्ट पार्टी की स्थापना की और 1963 में वे लोकसभा के सदस्य चुने गये।

लोकतन्त्र राज प्रणाली में विरोधी पार्टी का बड़ा महत्त्वपूर्ण दायित्व होता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस पार्टी के नेता और देश के प्रधानमंत्री थे। डॉ.

लोहिया को उनका विरोधी माना गया है। जब नेहरू के सामने चुनाव में खड़े होने का किसी में साहस नहीं होता था तब उन्होंने उनके विरुद्ध चुनाव लड़ा। आप अच्छे वक्ता थे। लोकसभा में पहले ही भाषण में सुननेवालों को स्तब्ध कर दिया कि देश के 27 करोड़ व्यक्ति केवल 3 आने (19 पैसे) प्रतिदिन खर्च करके जीवन निर्वाह करते हैं। उन्होंने देशवासियों और प्रधानमंत्री में असमानता को सप्रमाण प्रकट करते हुये बताया था कि प्रधानमंत्री के एक कुत्ते पर 3 रुपये प्रतिदिन खर्च होता है और उनकी सुरक्षा पर पच्चीस-तीस हजार रुपये प्रतिदिन खर्च होते हैं। उन्होंने अमीरी और गरीबी की विषमता को प्रकट करते हुए कहा था कि देश का खेत में काम करने वाला एक मजदूर 12 आने (75 पैसे) प्रतिदिन कमाता है जबकि एक व्यापारिक घराने की प्रतिदिन की आय तीन लाख रुपये है। डॉ. लोहिया ने चुनौती दी थी कि कोई व्यक्ति यदि इन तथ्यों को असत्य प्रमाणित कर दे तो वे लोकसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे देंगे।

डॉ. लोहिया देश में सामन्तवाद और सरकारी अपव्यय का विरोध करते थे। सरकारी कम्पनी द्वारा क्षय का टीका 2 (दो) आने (12 पैसे) में उत्पादन करने के बाद 12 (बारह) आने (75 पैसे) में बेचना एक प्रकार से निर्दयी डाका मानते थे। किसी भी नेता को विशेष विशेषणों के साथ पुकारना उचित नहीं मानते थे।

डॉ लोहिया के अनेक संस्मरण हैं जो दिल को छू जाते हैं। वे जो बोलत थे उसको जीवन में भी उतारते थे। वे सरकारी अपव्यय के खिलाफ थे। कभी अधिवेशन या बैठक में जाते थे तो वे मंहगे होटल में न ठहरकर, उस स्थान के किसी व्यक्ति या साधारण परिवार के घर पर ठहरते, जहाँ न के बराबर खर्च होता। एक बार तो डॉ. लोहिया को वाराणसी में गंगा के किनारे एक नाव पर सोते हुए पाया गया था। डॉ. लोहिया आम प्रजा के हित का बहुत ध्यान रखते थे। उनकी मृत्यु 12 अक्टूबर 1967 को हुई थी। ये अस्वस्थ चल रहे थे। भारत सरकार ने उनको उपचार के लिये विदेश भेजने का प्रस्ताव किया, जिसको उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उपचार के लिये डाक्टरों का एक दल अस्पताल में उनको देखने के लिये आया तो, डॉ. लोहिया ने उनको कहा कि आप डॉक्टरों की सामान्य जनता को अधिक आवश्यकता है। आप मेरी चिन्ता न करो। जिस विलिंडन अस्पताल में इनकी मृत्यु हुई थी उनका नाम बदल कर "राम मनोहर लोहिया अस्पताल" कर दिया गया। अवध विश्वविद्यालय को अब "राम मनोहर लोहिया विश्वविद्यालय" के नाम से जाना जाता है।



## (11) डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल

**भारत सरकार ने काशीप्रसाद जायसवाल के सम्मान में 1981 में 35 पैसे मूल्य की 20 लाख डाक टिकटें जारी की।**

काशीप्रसाद जायसवाल का जन्म 27 नवम्बर 1881 को हुआ। उनके जन्म स्थान के बारे में मतभेद हैं राहुल सांकृत्यान के अनुसार उनका जन्म अपने ननिहाल वासलीगंज में हुआ था। कुछ लोग मानते हैं कि उनका जन्म अपने पितृ गांव मिर्जापुर में हुआ था जो उत्तर प्रदेश प्रान्त में है। पिताजी का नाम श्री साहु महादेव प्रसाद था। उन्होंने स्नातक तक की शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैंड गये। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से भारतीय पुरातन इतिहास में डिग्री प्राप्त की और कानून की शिक्षा के लिए लिंकन्स इन में प्रवेश प्राप्त किया। देश वापिस आकर कोलकत्ता में वकालत करनी आरम्भ की। यहाँ पर उनका सम्पर्क सर आशुतोष मुखर्जी से हुआ। उनके सुझाव पर जायसवाल जी ऐतिहासिक अनुसंधान के कार्यों में अधिक समय देने लगे। परिणामस्वरूप 1913 में उनका पहला लेख 'हिन्दू पोलिटी' मोडर्न ट्रिव्यू' में प्रकाशित हुआ। इसमें भारत के पुरातन इतिहास पर नया प्रकाश डाला। इन नये अनुसंधानों के आधार पर उन्होंने दो महत्वपूर्ण इतिहास की पुस्तकों की रचना की 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया: 15ADto 350AD' तथा "इण्डियन हिस्ट्री 700BC to 770AD।" भारत के इतिहास की उस समय इतनी जानकारी नहीं थी। उस पर तथ्यों के साथ प्रकाश डालना देश और इतिहासकारो के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है। इसी क्रम में जहाँ हिन्दी भाषा का इतिहास राय श्याम सुन्दर के कथानुसार 1000 ई. के पास चन्दर वरदाई की रचना से माना था। डॉ. काशीप्रसाद ने उसे 750 ई. से होना प्रमाणित किया। उनका अभिमत था कि हिन्दी भाषा की दृष्टि से पिंगल भाषा का महत्त्व है। उनको एक पुरातन पाण्डुलिपि प्राप्त हो गई थी वह पुरबिया भाषा में थी जिसे मैथिल कवि 'देसिल बयाना' कहते थे जिसका जायसी के पदमावत से पूर्व बिहार में था।

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल मुद्रातत्व के महान् ज्ञाता थे उन्होंने पुराने मौर्या और गुप्त काल के सिक्कों को सूचिबद्ध किया। उनकी जानकारी भावी पीढ़ी को प्रदान की। सन् 1916 ईस्वी में बिहार राज्य की हाई कोर्ट की स्थापना

पटना नगर से हुई। काशीप्रसाद जायसवाल तब अपनी कर्मभूमि वहाँ ले गये। उन्होंने वहाँ कई पुरातन ऐतिहासिक स्थलों की खुदाई करवाई। उनको अनेक भारतीय संस्कृति सम्बन्धी वस्तुएँ प्राप्त हुई। वे सभी अभी पटना संग्राहलय में सुरक्षित प्रदर्शित हैं। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल को कई बहुमुखी प्रतिभा के लिए पटना विश्व विद्यालय ने डॉ. ऑफ फिलोसफी' की मानद् उपादि से विभूषित किया। यह विधि का विधान है कि प्रतिभाशाली विभूतियों को लम्बी अ[illegible] प्राप्त नहीं हो पाती है उनका 4 अगस्त 1937 को देहावसान हो गया।



## (12) घनश्याम दास बिड़ला

**भारत सरकार ने घनश्याम दास बिड़ला के सम्मान में 11 जून 1984 को 50 पैसे मूल्य की 20 लाख डाक टिकटें जारी की।**

घनश्याम दास बिड़ला का जन्म 14 अप्रैल 1894 को राजस्थान प्रान्त के पिलानी नगर में हुआ था। उस दिन राम नवमी का दिन था जो हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुसार वर्ष का बहुत ही पवित्र दिन होता है, क्योंकि इस दिन पुरूषोत्तम राम ने पृथ्वी पर देह रूप में अवतार लिया था। बिड़ला जी के पिताजी का नाम बल्देवदास बिड़ला और माताजी का नाम योगेश्वरी देवी था। परिवार की वित्तिय स्थिति कमजोर हो जाने के कारण उनके पिता शिवनारायण को जोखिम भरी यात्रा ऊँठ की पीठ पर बीस दिन तक करते हुए बम्बई जाना पड़ा। यहाँ पर अफीम का व्यवसाय आरम्भ किया। लाखों रुपयों की आमदनी हुई जिससे पिलानी में हवेली बनवाई और एक कुँआ भी खुदवाया। कूंए से मीठा पानी मिलने से उनके भाग्यशाली होने का समाचार सभी जगह फैल गया।

घनश्याम दास की प्रारम्भिक शिक्षा उसके पितामह शिवनारायण द्वारा स्थापित पाठशाला में हुई। तत्पश्चात उनको कलकत्ता भेज दिया गया। उन्होंने 'विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' में प्रवेश तो लिया परन्तु शिक्षा में रूचि नहीं होने के कारणं पाठशाला से बाहर समय बीतने के बाद घर लौट आते। इस भटकाव से घनश्याम दास को जीवन की वास्तविकता के दर्शन हुए। 1906 में उसके भाई रामेश्वर और उनका 13 वर्ष की आयु में विवाह हुआ। उसकी पत्नी दुर्गादेवी सेठ रामप्रसाद सोमानी की पुत्री थी। उसी वर्ष बिड़ला जी ने शेयर और दलाली का व्यवसाय करना आरम्भ कर दिया था।

1909 का वर्ष बिड़ला जी के जीवन का सबसे अधिक वेदना का वर्ष रहा उनके दादाजी की तपेदिक से मृत्यु हो गई। इसी रोग से उनकी पत्नी का प्रसव के समय अन्त हो गया।

घनश्याम दास बिड़ला जी किनारीदार धोती, कमीज व मौजों में मारवाड़ी व्यापारी के भांति सादी वेशभूषा में रहते थे। एक बार मै. ब्रिटिश जूट स्टर्लिंग कम्पनी के कार्यालय में व्यापार के सम्बन्ध में गये। लेकिन अंग्रेज अधिकारी ने उनसे मिलने से इंकार कर दिया। इससे बिड़लाजी के अहम् को

करारी चोट लगी। दूसरी घटना मैं. रोडा कम्पनी से गोदाम तक आने तक कारतूसों और हथियारों की चोरी के कारण उनके विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी होना था, जिससे वे पस्विार के प्रयत्नों से बच पाये।

इन घटनाओं ने बिड़लाजी को गम्भीर और व्यवस्थित ढंग से जीवन चलाने के सिद्धान्तों को अपनाने के मार्ग पर डाल दिया। वे व्यापार को पूरे परिश्रम और लग्न से चलाने लगे। देश में महात्मा गांधी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की बागडोर सम्भाले हुए थे। 1919 में पहला विश्वयुद्ध समाप्त हो गया था। उन्होंने तब उद्योग स्थापित करने का फैसला किया। एक कपड़ा और एक जूट मिल लगाने के लिए शेयर चालू किये। दलाली में इमानदारी के कारण इसमें अभूतपूर्व सफलता मिली जिसे जानकर अंग्रेज व्यापारी और शासक सकते में आ गये। उन्होंने बिड़ला जी की परियोजनाओं में हर प्रकार के अवरोध खड़े किये। इसको सम्भालने लिए प्रख्यात सोलिस्टिर, देवीप्रसाद खेतान को साथ लिया। इससे बिड़ला जी के उद्योग धन्धे संविधान के अनुसार मजबूत आधार पर खड़े हो गये। 1927 ई. में इंडियन चैम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्रीज की स्थापना की। 1921 में बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य मनोनीत हुए। 1923 में श्री श्रीप्रकाश के विरुद्ध मालवीय जी की स्वराज्य पार्टी से चुनाव लड़ा और विजयी हुए।

महात्मा गाँधी स्वाधीनता आन्दोलन के साथ स्वदेशी नीति को भी अपनाने के लिए भारतीयों को प्रेरित करते थे, जो बिड़ला जी के लिए उद्योगों में उन्नति और प्रगति के लिए वरदान सिद्ध हुए। इससे अंग्रेज व्यापारियों में खलबली मच गई क्योंकि उनकी पूंजी को हानि होने की सम्भावना थी। शासन ने देशी उत्पादन पर टैक्स लगाया और मुद्रा परिवर्तन में असमानता पैदा कर दी। इससे इंगलैण्ड से आयातित तैयार माल सस्ता बिकने लगा। घनश्याम दास बिड़ला उस अवधि में कांग्रेस पार्टी और ब्रिटिश साम्राज्य के बीच पुल का काम करने लगे थे। एक ओर वे कांग्रेस को ब्रिटिश नीति और कार्यक्रमों की सूचना देते थे दूसरी ओर ब्रिटिश शासन को गाँधी की नीति अपनाने के लिए तैयार करने के लिए उनसे विचार विर्मश करते थे। 19-01-1922 में उन्होंने बंगाल के दो समाचार पत्र 'द बंगाल' और 'न्यू एम्पायर' खरीदे जो राष्ट्रीय विचारधारा के मुख्यपत्र रहे।

घनश्यामदास बिड़ला जी अनपढ़ होने को दासता और गरीबी के लिए शाप मानते थे। उन्होंने अशिक्षा को समाप्त करने के लिए प्रारम्भिक और उच्च स्तरीय विद्यालयों की स्थापना की जिनमें पिलानी में बिड़ला इंस्टीटयूट ऑफ



टैक्नोलोजी एण्ड साइन्स, तकनीकी शिक्षा संस्थान, कई नगरों में पब्लिक स्कूल और हायर सैकेन्ड्री स्कूल, भिवानी में टैक्नालोजिकल इंस्टीटयूट ऑफ टैक्सटाइल तथा रांची में बिड़ला स्कूल ऑफ टेक्नोलोजी एण्ड साइंस आदि मुख्य हैं। ये शिक्षण संस्थान 'बिड़ला एजुकेशन ट्रस्ट' के आधीन चलते हैं, जिसकी स्थापना भी बिड़लाजी ने की थी। बिड़ला जी धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे वे नित्यदिन भगवत् गीता का पाठ करते थे। धार्मिक आस्था के साथ मानवता के प्रति दया भाव प्रचुर था। दिल्ली में बिड़ला मंदिर बनवाकर महात्मा गाँधी के हाथों उद्घाटन करवाया और उसी दिन से हरिजनों का प्रवेश भी करवाया। वे छूआछूत को नहीं मानते थे। बिड़ला जी तीर्थ और धाम आदि दर्शनार्थ जाते रहते थे। केदारनाथ और बद्रीनाथ के दर्शन किये। फिर यमुनोत्री और गंगोत्री भी गये। केदारनाथ की 16 कि. मी. की खड़ी चढ़ाई है। बिड़ला जी ने 1982 में 88 वर्ष की आयु में केदारनाथ की यात्रा की। वे शंकराचार्यों को हिन्दू धर्म का रक्षक मानते थे। इन्हीं सात्विक विचारों का प्रभाव ही था कि बिड़लाजी की दूसरी पत्नी महादेवी का 1926 में जब उनकी आयु मात्र 32 वर्ष थी स्वर्गवास हो गया था तब पुनः विवाह करना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने पुत्रों और पुत्री के लालन-पालन में समय दिया। देश के स्वाधीन होने के पश्चात् बिड़ला जी ने गरीब जनता की दशा सुधारने के लिए सरकार को सुझाव दिये। 1952 में युनाइटेड कामर्शियल बैंक की स्थापना की। 1958 में हिंडालको और 1960 में मैसूर सिमेन्ट कारखाना स्थापित किया। इसके बाद रत्नाकर शिपिंग कम्पनी के द्वारा विदेशों से तार जोड़ने का प्रयत्न किया। बिड़ला जी के पौत्र आदित्य बिड़ला ने विदेश में बैंकाक में 'इंडोलाइ सिंथेटिक्स कम्पनी लि.' के द्वारा उद्योग आरम्भ किया। बिड़ला ग्रुप इतना विस्तृत है कि उसका विवरण कम जगह पर दिया जाना सम्भव नहीं है। जिनकी गिनती अब दो सौ से ऊपर है।

घनश्याम दास बिड़ला जी की मृत्यु 11 जून 1983 को विदेश में लन्दन नगर में हुई। उनकी इच्छानुसार उनका दाह संस्कार लंदन के गोल्डन ग्रीन स्थान पर किया गया। तत्पश्चात् अस्थियाँ देश में लाकर गंगोत्री में प्रवाहित की गई।

# (13) डॉ. राजा सर एम. ए. मुत्तैया चेट्टियार

**भारत सरकार ने डॉ. राजा सरमुतैया एम.ए. चेट्टियार के सम्मान में 21 दिसम्बर 1987 में 60 पैसे मूल्य की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।**

डॉ. राजा सर मुत्तैया चेट्टियार का जन्म 5 अगस्त, 1905 को हुआ था। उनके पिता डॉ. राजा सर अण्णामलै चेट्टियार नाटुकोटै नागराज समुदाय के प्रतिष्ठित सदस्य थे। उन्होनें अपनी शिक्षा मद्रास (अब चैन्नई) में प्राप्त की। 1922 में वे प्रेसीडेंसी कॉलेज से स्नातक हुए। उसके बाद अपने परिवार के व्यवसाय के सिलसिले में बैंकिग में विशेषज्ञता हासिल करने के लिए बर्मा चले गए।

शिक्षा के बाद डॉ. चेट्टियार ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय योगदान दिये। मद्रास विधान परिषद के सदस्य बने जिसमें उन्होंने दक्षिण भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल का प्रतिनिधित्व किया। इस मंडल के साथ 50 वर्षों तक सम्बद्ध रहे और 1941 में इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1929 में वे प्रान्तीय बैंकिग जांच आयोग के और 1931 में मद्रास प्रान्तीय मताधिकार (फ्रैंचाइज) जांच समिति के सदस्य नियुक्त हुए। 1929 में वे मद्रास नगर निगम के सदस्य बने और 1933 तथा 1934 में उसके महापौर चुने गए। 1943 में वे भारतीय वाणिज्य और उद्योग मण्डल महासंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वे इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया (जो अब स्टेट बैंक ऑफ इंडिया है) तथा इंडियन बैंक से भी संबद्ध रहे।

शिक्षा के प्रति रूचि उन्हें विरासत में मिली थी। श्री मीनाक्षी कॉलेज, चिदम्बरम् को एक विश्वविद्यालय का केन्द्र बिन्दु बनाने में उन्होंने अपने पिता को सहयोग दिया। जस्टिस पार्टी के मुख्य सचेतक और विधान सभा अध्यक्ष के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आगे बढ़ाते हुए भी शिक्षा के प्रति उनकी रुचि बनी रही। 1936 में उन्हें शिक्षा, जन स्वास्थ्य और उत्पादन-शुल्क विभाग का मंत्री बनाया गया और एक वर्ष से अधिक समय तक वे मद्रास विश्वविद्यालय के प्रो. चांसलर भी रहे। वे 33 वर्षों तक मद्रास विश्वविद्यालय के सिंडीकेट तथा इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ टैक्नॉलाजी, मद्रास के प्रबंध मंडल में भी रहे।

1948 में अण्णामलै विश्वविद्यालय के प्रो. चांसलर बनने के बाद उस



विश्वविद्यालय का काफी विस्तार हुआ और उसमें शिक्षा, ललित कला, संस्कृति, विधि और चिकित्सा के संकाय खुल गए। साथ ही सामुद्रिक जीव-विज्ञान और भाषा-विज्ञान में उच्चतर अध्ययन के दो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग केन्द्र भी स्थापित हो गए। इसी दौरान इंजीनियरी और टैक्नॉलाजी का विकास होकर वह विभाग स्नातकोत्तर केन्द्र बन गया। अण्णामलै नगर में मुत्तैया पोलीटैकनीक और चेट्टिनाड में अण्णामलै पोलीटेकनीक खोल दिए गए।

तमिल भाषा और साहित्य, तमिल संगीत और संस्कृति के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी। तमिल के लिए की गई उनकी सेवाओं के कारण उन्हें ''तमिल इसै कावलर'' की उपाधि मिली।

1939 में विपक्ष के नेता के रूप में उन्होंने कुशल, निष्पक्ष और संतुलित सांसद के रूप में नाम कमाया। तब उनके पास स्थानीय प्रशासन और हिन्दू धार्मिक निधियों का कार्यभार था। 1941 में उन्हें नाइट की उपाधि दी गई। 1946 में वे नई दिल्ली में संविधान-सभा के सदस्य चुने गए।

व्यापार की दुनिया में वे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे और अन्य पदों के साथ-साथ चेटिट्नाड सीमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड, मद्रास, मटुरा कोट्स लिमिटेड, समेकित काफी लिमिटेड, कुर्ग और कुनूर टी एस्टेट, कुनूर के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहे। 12 मई, 1984 को देहावसान हो गया।

## (14) मोहनलाल सुखाड़िया

**भारत सरकार ने मोहनलान के सम्मान में 2 फरवरी 1988 को 60 पैसे मूल्य की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।**

मोहनलाल सुखाड़िया का जन्म 31 जुलाई, 1916 को राजस्थान प्रान्त के झालावाडा में हुआ था। उनके पिताजी का नाम श्री पुरुषोत्तम दास सुखाड़िया था। नाथद्वारा और उदयपुर से अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरा करने के बाद, उन्होंने मुम्बई में विद्युत इंजीनियरी का अध्ययन किया और इलैक्ट्रिक इंजीनियरिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया। उनका विवाह 11 जून, 1938 को इन्दूबाला के साथ हुआ। गृहस्थ जीवन उनके देशप्रेम को रोक नहीं सका। वे प्रजा मंडल आंदोलन से 1939 में सक्रिय रूप से जुड़ गए। उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन में ही स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ना पड़ा।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्हें डेढ़ वर्ष की कैद हुई। 1946 में वे तत्कालीन मेवाड़ राज्य के नागरिक आपूर्ति, सार्वजनिक निर्माण, राहत और पुनर्वास मंत्री बने। राजस्थान में दलित जनता के उत्थान के लिए ठक्कर बापा की कल्याण योजनाओं से भी वे सम्बधित रहे।

राजस्थान राज्य का गठन होने के बाद 1948 में उन्होंने विकास मंत्री के रूप में राज्य मंत्रिमंडल में कार्यभार संभाला। 1951-52 में वे नागरिक आपूर्ति, कृषि एवं सिंचाई मंत्री रहे। 1952 में हुए पहले आम चुनावों में राजस्थान विधान सभा के लिए चुने जाने पर राजस्व, कृषि एवं अकाल राहत मंत्री बने। 13 नवंबर, 1954 को वे राजस्थान के मुख्यमंत्री बने और 1971 तक इस पद पर कार्य करते रहे।

मुख्यमंत्री के रूप में राज्य में भूमि सुधार और पंचायती राज शुरू करने में उन्होंने एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाई। राजस्थान को एक सुदृढ़ राज्य बनाने की समस्या का उन्होंने स्थिर चित होकर समाना किया। उनके मुख्यमंत्री काल में राजस्थान का सुनियोजित विकास और औद्योगिकरण हुआ। उन्होंने राज्य में शिक्षा तथा चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार को भी प्रोत्साहित किया। 1961 में उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी समिति का सदस्य नामित किया गया।

1972 और 1977 के बीच की अवधि के दौरान वे कर्नाटक, आन्ध्रा प्रदेश और तमिलनाडु के राज्यपाल नियुक्त किए गए।

1980 में वे उदयपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से लोक सभा के लिए चुने गए। उनका 2 फरवरी, 1982 को देहावसान हो गया।



## (15) राष्ट्ररत्न-बाबू शिवप्रसाद गुप्त

**भारत सरकार ने शिवप्रसाद गुप्त के सम्मान में 26-06-1988 को 60 पैसे मूल्य की 10 लाख डाक टिकटें जारी की।**

बाबू शिवप्रसाद गुप्त का जन्म 18 जून 1883 को तदानुसार असाढ कृष्णपक्ष सम्वत् 1940 को वाराणसी नगर में हुआ। उनके पिता नरोत्तम बनारस नगर के धनाढ्य व्यवसायी थे।

शिव प्रसादजी जब 6 वर्ष के थे उनके पिता का देहान्त हो गया। पारिवारिक व्यवसाय और लालन-पोषण पिताजी के बड़े भाई मोती चन्द्र ने सम्भाला। उनकी शिक्षा का प्रबन्ध हिन्दी, फारसी और गणित के अध्यापकों द्वारा घर पर ही पढ़ाने के लिए नियुक्ति करके किया गया। एफ. ए. की शिक्षा समाप्त करते हुए शिवप्रसाद गुप्त के जीवन में दो हृदय विदारक घटनायें हुई। परम मित्र और रिश्ते में चाचा देवी प्रसाद का देहान्त हुआ। तत्पश्चात् वह जिस भाई हरप्रसाद के साथ 15 वर्ष तक खेले, लड़े, झगड़े, प्रेम किया वह भी चल बसा।

शिव प्रसाद गुप्त का विवाह 13 वर्ष की आयु में भगवती देवी के साथ हुआ। अंग्रेजी विषय लेकर एफ. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1904 में उनका राजनीतिक जीवन आरम्भ हुआ। जब उनकी आयु केवल 21 वर्ष थी, वे कांग्रेस पार्टी के अधिवेशन में एक कार्यकर्त्ता के रूप में भाग लेने लगे। इससे पहले 'काशी अग्रवाल सभा' और 'अग्रवाल स्पोर्टस क्लब' के सदस्य बनकर उन्होंने अपनी एक ताकतवर मित्र मंडली तैयार की। शिव प्रसाद के आग्रह पर अगले वर्ष 1905 ई. में काशी में राजघाट पर कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता गोपाल कृष्ण गोखले जी ने की। 1906 में वे कोलकत्ता के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में शामिल होने गये। वहाँ बिपिन चन्द्र पाल के शिक्षा सम्बन्धित विचारों से प्रभावित होने के कारण वे सरकारी शिक्षा नीति के विरोधी बन गये। उनके द्वारा प्रकाशित 'स्वराज' पत्र के वे नियमित पाठक बन गये। 1911 से 1913 तक 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना के लिए मदन मोहन मालवीय के साथ दौरा करते रहे। 30 अप्रैल 1913 को इंग्लैंड में लाला लाजपतराय के साथ रहने का अवसर मिला। स्वदेश आने की सोच ही रहे थे कि प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। स्वदेश आने के साधन नहीं मिलने के कारण वे जगदीश चन्द्र बसु के साथ अमेरिका गये और वहाँ उन्होंने अमेरिका की शिक्षा

प्रणाली का अध्ययन किया। सामाजिक जागृति और सांस्कृतिक स्तर की जानकारी मिली। चीन, जापान की यात्रा के बाद सिंगापुर के रास्ते अपने देश आ रहे थे तो उनको पकड़ कर जेल में डाल दिया गया। जिसका वितरण 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' नाम की पुस्तक में दिया गया है। इन गतिविधियों के कारण ब्रिटिश सरकार उन पर शंका करने लगी। उस दशक में घटनाएँ तेजी से हो रही थी। गाँधी जी का दक्षिणी अफ्रीका से स्वदेश लौटाना, जलियॉवाला बाग हत्याकांड प्रमुख है।

शिव प्रसाद गुप्तजी का 'सेवा उपवन' राष्ट्रीय स्तर के कांग्रेसी नेताओं की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। साइमन कमिश्न के बहिष्कार का निर्णय यहाँ पर ही लिया गया। जलियाँवाला बाग हत्याकांड पर कांग्रेस द्वारा बैठाई गई जाँच कमेटी की रिपोर्ट पर महात्मा गाँधी, देशबन्धु दास एवं मोतीलाल नेहरू के हस्ताक्षर यहाँ पर ही हुए थे। देशबन्धु दास और चितरंजन दास ने इसी 'सेवा उपवन' में बैठकर कांग्रेस कार्य समिति का गठन किया। शिव प्रसाद कांग्रेस के अतिरिक्त किसी अन्य दल के गठन का विरोध करते थे। उनका मत था कि इससे कांग्रेस कमजोर होती है। 'सेवा उपवन' में प्रत्येक व्यक्ति के आने, रहने, पीने व सोने तक की व्यवस्था स्वयं करते और खर्च भी वहन करते थे।

कांग्रेस पार्टी के आदेशनुसार शिव प्रसाद गुप्त म्युनिसिपल बोर्ड के चुनाव में निर्विरोध चुने गये। उसमें श्रीप्रकाश, डॉ. भगवान दास और डॉ. सम्पूर्णानन्द प्रमुख सहयोगी थे। इस बोर्ड में 'साम्राज्य दिवस, दरबार दिवस' की सार्वजनिक छुट्टियाँ रद करवाकर, महात्मा गाँधी के जेल जाने के दिन 19 मार्च, लोकमान्य तिलक के स्वर्गवास होने के दिवस' 1 (एक) अगस्त एवं जलियाँवाला हत्याकांड दिवस 13 अप्रैल की छुट्टियाँ घोषित करने का फैसला किया गया।

राजनीतिक गतिविधियों के साथ शिव प्रसाद गुप्त ने समाज सेवा में ढील नहीं दिखाई। 10 फरवरी 1921 को 'काशी विद्यापीठ' की स्थापना की। 5 सितम्बर 1920 से 'आज' नाम से दैनिक समाचार पत्र निकलवाना आरम्भ किया। 24 अक्टूबर 1936 को 'भारत माता मंदिर' की स्थापना की। ये संस्थायें आज भी सफलतापूर्वक चल रही हैं, और शिव प्रसाद गुप्त की विचाराधारा और उद्देश्यों की पूर्ति कर रही हैं। उनको हिन्दी भाषा से इतना प्रेम था कि हिन्दी जानने वाले व्यक्ति से यदि पत्र पर पता भी अंग्रेजी में लिखा होता तो वापिस कर देते थे। अपनी कार की नम्बर प्लेट हिन्दी में लिखवाई हुई थी। एक बार इस कारण से उनका चालान हो गया तो मुकदमा हाई कोर्ट ले गये। अपने समाचार



पत्र में कोई शब्द रोमन लिपि में नहीं लिखने की आज्ञा थी।

शिव प्रसाद गुप्त 1929 में पुनः विदेश यात्रा पर गये और 21–4–1930 को लौटे। उस समय नमक पर आन्दोलन चल रहा था। उसमें भाग लेने पर गिरफ्तार कर लिये गये। बाद में इर्विन–गाँधी एक्ट के आधीन छोड़ दिये गये। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और मादक पदार्थ की दुकानों के सामने पिकेटिंग का नेतृत्व करते हुए 20 जून 1930 को उन्हें पुनः गिरफ्तार किया गया। तब धारा 144 तोड़ने के अपराध में 3 महिने की सजा और 3 सौ रू. जुर्माना करके बस्ती जेल में डाल दिया गया। इसी दौरान टाउन हाल पर दिये गये उनके भाषण को देशद्रोह का अभियोग मानकर 1 वर्ष अतिरिक्त कारावास मिला। कांग्रेस कमेटियों और काशी विद्यापीठ को गैरकानूनी घोषित करके पुलिस ने उन्हें अपने कब्जे में ले लिया। 1 जुलाई 1931 को जब वे रिहा हुए तो बहुत कमजोर हो गये थे। लगभग 25 पौण्ड वजन कम हो गया था। ब्रिटिश सरकार ने धर्म के आधार पर प्रतिनिधित्व का फैसला लिया। जिसका सारे देश में विरोध हुआ। काशी में भी जूलूस निकाला गया जिसका नेतृत्व शिवप्रसाद गुप्त ने किया जिसमें 17 अगस्त 1932 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 16 सितम्बर को एक वर्ष की सजा के लिये उन्हें लखनऊ जेल भेजा गया। वहाँ 15 अक्टूबर को प्रातः शौच जाते समय पक्षाघात हो गया जिससे उनका बायाँ अंग बेकार हो गया। 23 अक्टूबर 1932 को उन्हें पक्षाघात के कारण जेल से छोड़ दिया गया।

शिव प्रसाद गुप्त की कार्य शैली अनुपम और प्रेरक थी। वे आमोद प्रमोद के अवसर को नहीं चुकते थे। मालवीय जी जब कलकत्ता पहुँचे तो घोड़ा गाड़ी से घोड़ा हटवाकर स्वयं गाड़ी खींचने लगे। इससे जनसमूह में गजब का उत्साह उभर आया और लोगों में धन देने की होड़ लग गई थी। वे बच्चों को बहुत प्यार करते थे। उनसे छेड़छाड़ करने का उनका अपना तरीका था। वे बच्चों से अपनी दाढ़ी खिचवा कर खुश होते थे। कभी उनको अपने ढीले–कपड़ों में छुपाकर सबको आश्चर्य चकित कर देते थे। गंगा घाट पर स्नान करते बच्चों से मुँह के द्वारा लड्डू पकड़वाकर खेल रचा देते थे।

शिव प्रसाद गुप्त को पुस्तकों से बड़ा प्रेम था। जब वे विदेश यात्रा से आये तब लाखों रूपए की पुस्तकें खरीदकर लाये। प्रकाशकों को उन्होंने आदेश दे रखे थे कि जब कोई नई पुस्तक प्रकाशित हो एक प्रति उनको तुरन्त भेज दी जाये। क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त ने यह स्वीकार किया है कि शिव प्रसाद गुप्त उनको जेल में पुस्तकें पहुंचाया करते थे और पढ़ने के बाद उनको लौटाने के लिए पैसे

भी देते थे।

शिव प्रसाद जी गांधीवादी होते हुए भी, क्रान्तिकारियों की दिल खोलकर सहायता करते थे। उन्होंने अपनी सचिव अन्नपूर्ण को कोड-व्यवस्था बताई हुई थी "हाँ" कहने का अर्थ 100/- रुपया, अच्छा कहने का अर्थ 500/- (पाँच सौ) रुपया और कुछ कहने का अर्थ 1000/- (एक हजार) रुपया समझने की प्रक्रिया होती थी। चन्द्रशेखर आजाद गिरफ्तारी से बचने के लिए नित्य स्थान बदलते रहते थे। इसके बावजूद भी उनको नियमित सहायता पहुँचती थी।

शिव प्रसाद गुप्त की महात्मा गाँधी में असीम निष्ठा थी उन्होंने 1921 में काशी विद्यापीठ और 1936 में 'भारत माता मंदिर' के उद्घाटन के लिए गाँधी जी को ही बुलाया था। ऐसा गांधीवादी राष्ट्रीय पुरूष भारत की स्वाधीनता को देख नहीं पाया। 16 अप्रैल 1944 को उनका देहान्त हो गया।



# (16) श्रीप्रकाश

**भारत सरकार ने श्रीप्रकाश जी के सम्मान में 3-8-1991 को 2 रुपये मूल्य की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।**

श्रीप्रकाश जी का जन्म भाद्रकृष्ण 4 सम्वत् 1947, तदानुसार 3 अगस्त 1890 को उत्तर प्रदेश की विद्या और धार्मिक नगरी वाराणसी में हुआ। उनके पिता भारत रत्न विभूषित, प्रख्यात विद्वान्, शिक्षाविद्, दार्शनिक और स्वतंत्रता के प्रथम पंक्ति के सेनापति डॉ. भगवान दास थे, जिनके पिता साह माधावदास ने धानाढ्य होते हुए एक अध्यापक की पुत्री से बेटे का विवाह रचाया था। श्रीप्रकाश जी की शिक्षा का सर्वोत्तम प्रबन्ध किया गया। प्रारम्भिक शिक्षा पूरी होने के पश्चात् अपने पिताश्री और उनके सहयोगियों द्वारा स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू कालेज से हाई स्कूल और बी. ए. की परीक्षाएं उत्तीर्ण की। 1911 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में आगे की शिक्षा प्राप्त करने गये जहाँ से बी.ए.एल.एल.बी. करने के पश्चात् "टेम्पल" से बैरिस्टर बनें।

श्रीप्रकाश जी योरूप देशों की यात्राएं करने के पश्चात् 1914 ई. में भारत वापिस आये। यहाँ आकर वाराणसी के तत्कालीन विख्यात वकील मुंशी महादेव प्रसाद के साथ वकालत का काम आरम्भ किया। वकालत का कार्य उनके आदर्शों के अनुकूल नहीं था इसलिए बनारस के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में इतिहास के अध्यापक बनें। कुछ दिनों के पश्चात् इलाहबाद के अंग्रेजी 'लीडर' के सम्पादक मंडल में तेजस्वी पत्रकार श्री सी. वाई. चिन्तामणि के निर्देशन में काम किया। पं. मोतीलाल नेहरू द्वारा संचालित अंग्रेजी के राष्ट्रीय दैनिक 'इन्डिपेन्डेट' के बाद, 'नेशनल हैरल्ड' को आर्थिक संकट की परिस्थिति में सम्भाला। शिवप्रसाद गुप्त असहयोग आन्दोलन के मुख्य नायक थे। उन्होंने 'आज' समाचार पत्र स्थापित किया जिसमें अंग्रेज शासन के दमन और अत्याचार के समाचार मुख्य रूप से दिये जाते थे। इस समाचार पत्र को विष्णु पराडकर के साथ जन समान्य में लोकप्रिय बनाने में मुख्य भूमिका निभाई।

कांग्रेस पार्टी ने प्रस्ताव पास करके सरकारी विद्यालयों और संस्थाओं के बहिष्कार का आह्वान किया। विद्यार्थियों की शिक्षा को निरन्तर रखने के लिए कोई अन्य प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया था। श्री शिवप्रसाद गुप्त ने 10 लाख

रुपये मूलधन से अपने छोटे भाई श्री हरप्रसाद की स्मृति में एक शिक्षानिधि स्थापित की। श्रीप्रकाश जी वर्षों तक इसके मन्त्री और कोषाधयक्ष रहे। 1971 ई. में वे इसके सभापति बने। इस शिक्षानिधि ने महात्मा गाँधी की प्रेरणा से 10 फरवरी 1921 को काशी-विद्यापीठ की स्थापना की। इसमें श्री प्रकाश जी व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों के साथ-साथ प्रतिदिन अंग्रेजी साहित्य, राजशास्त्र और न्यायशास्त्र का अध्यापन करते थे। उनकी कार्य कुशलता और कर्त्तव्यपरायणता के आधार पर विधार्थियों ने 'आदर्श नागरिक' की उपाधि से सम्मानित किया। उनके विधार्थियों में श्री लाल बहादुर शास्त्री, त्रिभुवन नारायण सिंह, डॉ. राम सुभग सिंह, डॉ. बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर, कमलापति त्रिपाठी, भोला पासवान कुछ प्रमुख नाम हैं। 1969 में श्रीप्रकाश जी को इस विद्यापीठ का कुलाधिपति बनाया गया।

श्रीप्रकाश जी शिक्षा, राजनीति आदि के कार्यों के साथ समाज सेवा भी करते रहे। काशी में अग्रवाल समाज, स्पोर्टस क्लब की स्थापना की। काशी सेवा समिति की स्थापना की और उसके प्रथम प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए। बिहार में भयंकर भूकम्प आया तब उन्होंने वहाँ लगभग ढाई महीने रहकर पीड़ितों की सेवा की। काकोरी षड्यंत्र और दानापुर हत्याकाडों के मुकदमों में स्वाधिनता सैनिकों को बचाने में उनके वकील बनकर निःशुल्क कार्य किया। 1946 में उनके प्रयत्न से ब्रिटिश सरकार ने जयप्रकाश नारायण और डॉ. राम मनोहर लोहिया को मुक्त करना पड़ा।

राजनीतिक क्षेत्र में श्रीप्रकाश जी को अन्य नेताओं की भांति प्रशासन की सजायें और पीड़ाएं सहन करनी पड़ी। नमक सत्याग्रह का संचालन करने पर उनको छः महीन का कारावास और जुर्माना हुआ। 1934 और 1946 में सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। श्री प्रकाश जी का भाषण जन सामान्य बड़ी रुचि से सुनते थे। वह  हास्य व चुटकियों से पूर्ण होता था। उससे सरकारी तन्त्र तिलमिला उठता था। सन् 1941 में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को द्वितीय महायुद्ध में शामिल किये जाने के विरोध में असहयोग करने पर कारावास का दण्ड मिला। 1942 में 'भारत छोड़ो' के आन्दोलन में उनको नजरबन्द करके रखा गया।

श्री प्रकाश जी का कार्य करने की शैली बिल्कुल भिन्न थी। वे जनसामान्य के नजदीक रहना पसन्द करते थे। इसलिए वे वर्ष में लगभग 6 महीने दौरों में व्यतीत करते थे। वे सभी के लोकप्रिय थे। वे सुसभ्य व्यक्ति की भांति ही छोटे से छोटे कार्यकत्ताओं से स्नेह और आत्मीयता से मिलते थे। उनमें कोई भिन्नता नहीं



रखते थे। इसी कारण से किसी प्रान्त में कलह या गुत्थियां होती तो उन्हें दूर करने और सुलझाने के लिए उनको भेजा जाता था। 1947 में देश को स्वाधीनता मिलने के बाद, श्रीप्रकाश को पाकिस्तान में पहला हाई कमिश्नर बनाकर भेजा गया। साम्प्रादियक झगड़ों की कोई चिन्ता न करते हुए संकटग्रस्त स्थानों का दौरा करते थे। शरणार्थियों के योगक्षेम तथा आफत में फंसे हुओं को बचाने में वे प्रायः 16 घण्टे परिश्रम करते रहते थे। इसी प्रकार की परिस्थिति आसाम में होने पर श्रीप्रकाश को वहाँ राज्यपाल बनाया गया। वहाँ उन्होंने नागरिक प्रशासन के साथ सेवा का भी संचालन करना पड़ा था। जब वहाँ शान्ति स्थापित हो गई तो श्रीप्रकाश जी को केन्द्र में वाणिज्य मन्त्री का पद-भार सम्भालने के लिए दिल्ली बुला लिया गया। सन् 1952 में  साधारण निर्वाचन के पश्चात् वे पुनः वाणिज्य मन्त्री बनाये गये। परन्तु उसी समय मद्रास प्रान्त में प्रशासकीय संकट पैदा हुआ। वहाँ दुर्भिक्ष की स्थिति भी पैदा हो गई थी। श्री प्रकाश जी को वहाँ राज्यपाल का पद-भार सम्भालना पड़ा। उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए सामान्य स्थिति बना दी। तत्पश्चात् बम्बई प्रान्त का राज्यपाल बनें। उन दिनों महाराष्ट्र, गुजरात और विदर्भ का प्रश्न बड़ा ही जटिल था। उनकी योग्यता और दूरदर्शिता के कारण महाराष्ट्र और गुजरात दो राज्यों का गठन बड़ी सहजता से सम्पन्न हो सका। उनकों नव-गठित महाराष्ट्र प्रान्त के प्रथम राज्यपाल बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

श्री प्रकाश ने उपरोक्त सरकारी पदों के साथ अन्य उत्तरदायित्वों को भी निभाया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रेडियो समाचार, विद्यार्थियों में नैतिक शिक्षा आदि में सुधार के लिए बहुमूल्य सुझाव दिये। श्री प्रकाश जी समय को बहुत महत्त्व देते थे। दौरों पर, सम्मेलनों में, बैठकों में घड़ी की सुई की भांति ठीक समय पर पहुंचना उनकी विशेषता रही।

श्री प्रकाश जी ने इतने उत्तरदायित्वों के बावजूद लेखन के कार्यों के लिए भी समय निकाला। गृहस्थ गीता भारत के समाज और इतिहास पर विचार, नागरिक शास्त्र, पाकिस्तान के आरम्भिक दिन, भारत रत्न डॉ. भगवानदास का जीवन चरित्र हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी।

श्री प्रकाश जी ने महाराष्ट्र के राज्यपाल पद से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् अन्य कोई पद स्वीकार नहीं किया। वे देहरादून से दस मील दूर राजपुर में विश्राम कुटी बनाकर रहने लगे। 2 अक्टूबर 1969 को महात्मा गांधी की जन्म शताब्दी के अवसर पर मसूरी में उनकी मूर्ति का अनावरण करने के लिए जा रहे थे, तब पेशाब रुकने की बीमारी हो गई। इस बीमारी का उपचार नहीं होने के कारण उनका 23 जून 1971 को देहान्त हो गया।

# (17) जयशंकर प्रसाद

**भारत सरकार ने जयशंकर प्रसाद के सम्मान में 16-9-1991 को 2 रूपये मूल्य की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।**

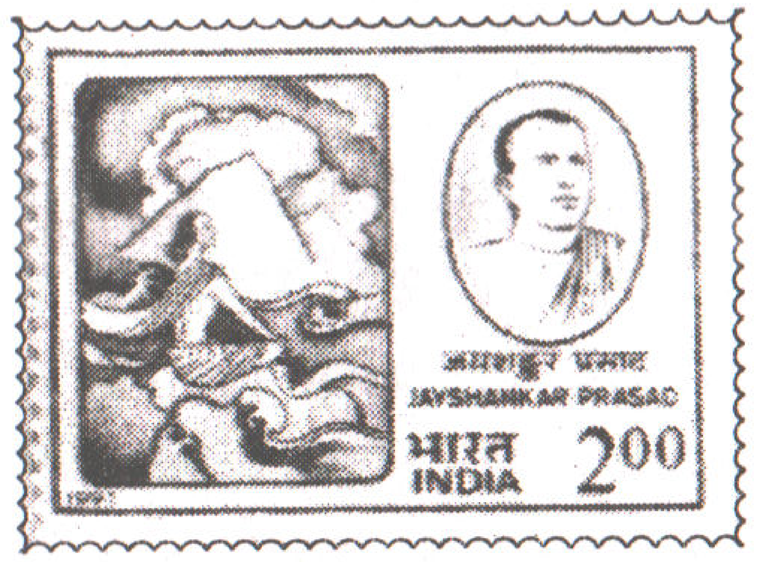


जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्लादशमी सम्वत् 1946 तदानुसार 31 जनवरी 1889 को उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी नगर में हुआ। उनके पिताजी का नाम देवी प्रसाद साहू था। उनका सुरती का व्यवसाय था जो 'सुघनी साहू' के नाम से देश के कोने-कोने में बिकती थी। इस व्यापार से वाराणसी के गोवर्धन सराय में जमीन खरीदकर भवन निर्माण करवाया और साथ ही सदाशिव का मंदिर बनवाया। प्रचुर आय के साथ उच्च श्रेणी के जीवन निर्वाह का परिवार में चलन आरम्भ हो गया था। घोड़ा बग्गी की सवारी, सेवक रखना शान की बात थी इसी धनाढ्य प्रवृत्ति के कारण पहलवानी अखाड़ा कई पीढ़ियों तक चला। जयशंकर प्रसाद स्वयं पहलवानी करते थे। अपनी जवानी में नियमित रूप से प्रतिदिन एक हजार बैठक और पाँच सौ दण्ड निकालते थे। 4-5 पहलवानों से जोर करते थे। नित्य गाय का एक सेर दूध पीकर व्यायाम करते और बाद में जमकर बादाम, घी आदि का सेवन करते थे। उनका कद 5 फुट 2 इंच और वजन तीन मन के लगभग था। स्वयं शौकिया कुश्ती करते थे और दूर-दूर तक दंगल देखने जाया करते थे। प्रसाद को जानने वाले उनको 'नटवा बैल' या 'नाटी बछिया सदा कबोय' कहकर चिड़ाते थे।

जयशंकर प्रसाद जी की शिक्षा क्वींस कालेज में छटी कक्षा तक हुई। उनके पिताजी की मृत्यु जब वे मात्र 15 वर्ष के और माताजी की मृत्यु जब उनकी आयु 17 वर्ष की थी हो गई। इससे उनकी शिक्षा नियमित रूप से आगे नहीं बढ़ पाई। उनको हिन्दी और संस्कृत पढ़ाने के लिए अध्यापक घर पर ही आते थे। विद्यार्थी काल में ही प्रसाद जी 'कलाधर' उपनाम से लिखने लगे थे। शुरू में ब्रजभाषा में कविताएं लिखते थे। प्रसाद जी पर निजी व्यापार को आगे बढ़ाने का दबाव बढ़ता गया। वे दुकान पर आकर बैठ तो जाते परन्तु उनकी काव्य वृत्ति व्यापार में पूरा ध्यान नहीं लगने दे रही थी। वहाँ पर वे खाते के रद्दी कागजों पर कविताएं लिख लिया करते। जयशंकर प्रसाद विनोदप्रिय थे उन्होंने परिचितों, मित्रों और परिवारजनों के नामकरण किये हुए थे। एक बार अध्यापक महोदय भूगोल का



अध्याय पढ़ा रहे थे और उन्होंने एक प्रश्न कापी में उतारने का आदेश दिया। प्रसादजी ने अपने सहपाठी लक्ष्मीनारायण सिंह के साथ दोहा-चौपाई रूप में पद्य शैली में लिख डाला। अध्यापक महोदय ने जब जाँच की तो ऊपरी दिखावटी क्रोध जताते हुए बोले, "यहाँ तुम दोनों पढ़ने आये हो या शायरी करने?" यह संस्मरण सिद्ध करता है कि प्रसाद जी किस सीमा तक कविता और काव्य शैली में रूचि रखते थे। व्यवसाय में दिन प्रतिदिन उतार चढ़ाव आते रहते हैं। प्रसादजी के बड़े भाई बाबू शम्भू रत्नजी उन पर प्रतिबन्ध इसलिए लगाते थे कि परिवार पर ऋण का बोझ कम हो जाये। उनकी मृत्यु के पश्चात व्यापार का सारा उत्तरदायित्व उनके कंधो पर आ पड़ा। तब प्रसादजी ने अपनी दिनचर्या को बदल देना पड़ा। वे कस्तूरी या अन्य वस्तुओं गुलाब जल और इत्र की परख करने में कुशल थे। वे व्यवसाय में पूर्ण ज्ञाता भी थे। सुर्ती, इत्र और हर प्रकार के 'टायलेट' का सामान बहुत सुन्दर बना लेते थे।

जयशंकर प्रसाद जी व्यापार का उत्तरदायित्व अनचाहे मन से निभाते रहे। उनकी दिनचर्या साहित्यिक रहती। प्रात:काल से रात्रि तक वे या तो पढ़ने-लिखने अथवा लेखक और कवियों से चर्चा में व्यतीत करते थे। सायंकाल स्नानादि से निवृत होकर नारियल बाजार वाली दुकान की गद्दी पर नहीं वे बैठते, बल्कि दुकान के सामने चौक थाने के ठीक पीछे एक कमरा ले रखा था, उसमें दरी, चाँदनी बिछ जाती, उसके आगे तकिया लगा होता, फिर वहीं साहित्यिक दरबार लगा होता। उस दरबार में हिन्दी के बड़े-बड़े साहित्यकार, कवि और लेखक मिलते जिनमें-मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्णदास, निराला, उग्र आदि प्रमुख थे। यह लगभग दो घंटे प्राय: रात के दस बजे तक होता। तत्पश्चात् मुंह में पान जमाकर प्रसाद जी अपनी लेखनी चलाते थे। इस प्रकार प्रसाद जी को आराम और निद्रा की पूर्ति नहीं हो पाती थी। पाचनशक्ति क्षीण हो जाने के कारण डायरिया की शिकायत रहने लगी थी। शारीरिक कष्टों के बावजूद प्रसाद जी निरन्तर साहित्य रचना करते रहे। 1910 ई. में उन्होंने साहित्य लेखन आरम्भ किया। उन दिनों सरस्वती पत्रिका एक प्रमुख साहित्यिक पत्रिका थी। प्रसाद जी का आचार्य द्विवेदी जी से कुछ मतभेद था। प्रसाद जी ने अपने भान्जे श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त से 'इन्दू' मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ करवाया। इस पत्रिका के लिए वे बराबर लिखते रहे और उसमें छपता रहा। इस पत्र में जो आर्थिक नुकसान होता, प्रसादजी उसकी भरपाई करते थे। प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'आम्रपाली' और 'ध्रुवस्वामिनी' ऐतिहासिक नाटक लिखे। इन पुस्तकों की आलोचना होना स्वाभाविक था। किसी ने उनको

गड़े-मुर्दों को उखाड़ने का प्रयास कहा। कानपुर के 'प्रताप' समाचार पत्र में कृष्णानन्द गुप्ता का एक लेख छपा था जिसमें कहा गया था कि ये नाटक ''ऐसी ब्रजभाषा में लिखे गये हैं कि उसे समझना भी टेढ़ी खीर है और खेले तो जा नहीं सकते।'' वारणसी के कुछ युवक साहित्यकारों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और प्रसाद जी के निर्देशन में उनका मंचन किया। उनमें लक्ष्मीकान्त झा जो बाद में जम्मू-कश्मीर और रिजर्व बैंक के गर्वनर रहे और गणेश दत्त झा, जो बाद में राजस्थान के जज रहे आदि विख्यात व्यक्तियों ने भाग लिया था। 'नारी और लज्जा' और 'आँसू' छायावाद की हृदय स्पर्शी कविताऐं हैं। प्रसाद जी के समय में अधिकतर कहानियाँ और लेख अन्य भाषा में अनुवाद होने के बाद प्रकाशित होती थी। जब प्रसाद जी की 'आकाशदीप' और 'गुण्डा' कहानियाँ मौलिक रचना के रूप में छपी तो सभी लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था।

28 जनवरी 1937 से जयशंकर प्रसाद को ज्वर आने लगा था। जब उनके बलगम की जाँच की गई तो मालूम हुआ कि उनको राजयक्ष्मा हो गया है इस रोग के बारे में प्रसाद जी भली प्रकार से जानते थे, क्योंकि उनकी पूर्व पत्नियों का देहान्त इसी बीमारी से हुआ था। इस अवधि में प्रसाद जी 'कामायनी' की रचना कर रहे थे। डॉ. एच. सिंह उनका उपचार करते थे। कामायनी के पूरा होने के बाद उन्होंने 'इरावती' उपन्यास की रचन आरम्भ की थी जो पूरी नहीं कर सकें। यहाँ तक की यात्रा में प्रसाद जी की वित्तिय स्थिति व्यवसाय और सम्पत्ति पर कोर्ट आर्डर के कारण इतनी दयनीय हो गयी थी कि जो चांदी के बर्तनो में खाना खाता था उसे हंडिया में सब्जी पकानी पड़ी थी। राजयक्ष्मा रोग से जयशंकर प्रसाद का देहावसान 46 वर्ष की अल्पायु में 14 अक्टूबर 1937 को हुआ। हिन्दी साहित्य को एक भारी क्षति हुई।



# (18) हनुमान प्रसाद पौद्दार

**भारत सरकार ने हनुमानप्रसाद पौद्दार के सम्मान में 10-9-1992 को 1 रुपये मूल्य की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।**

हनुमान प्रसाद पोद्दार का जन्म 17 दिसम्बर 1892 ई. में रतनगढ़ में हुआ। यह नगर राजस्थान प्रान्त में है। इनके पिताजी का नाम भीमराज और माता जी का नाम रीखि बाई था। पोद्दार जी अब केवल 5 वर्ष के थे, माता जी का देहान्त हो गया और उनके लालन पालन का उत्तरदायित्व इनकी दादी रामकौर ने सम्भाला। आरिम्भक शिक्षा कलकत्ते में प्राप्त कीं।

हनुमान प्रसाद के दो विवाह हुए थे। दादी रामकौर ने रतनगढ़ में ही एक परिवार की बालिका महादेवी से पहला विवाह निश्चित कर दिया था। दुर्भाग्य से महादेवी को चेचक की बीमारी ने आ घेरा। इससे चहरे पर दाग के निशान हो गए और वह पैर से विकलांग हो गयी। फिर भी हनुमानप्रसाद ने उस बालिका से विवाह करने में आनाकानी नहीं की। हनुमानप्रसाद का दुर्भाग्य यहीं तक सीमित नहीं रहा। महादेवी ने सम्वत् 1961 में विवाह के बाद सम्वत् 1966 में एक पुत्र को जन्म दिया। महादेवी दो सप्ताह के बाद और पुत्र दो महीने के बाद चल बसे। हनुमानप्रसाद इससे दुःखी और विचलित रहने लगे थे। पिता भीमराज इससे दुःखी हुए और वंश को आगे बढ़ाने के उदेश्य से उनका दूसरा विवाह राजगढ़ के सेठ मंगलराम की पुत्री मुवटीबाई से रचाया।

हनुमानप्रसाद को शिक्षा, सदाचार, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता, मितव्ययता आदि सद्गुण विरासत में मिले थे। उनके पिता भीमराज का सवर्गवास सम्वत् 1969 को हो गया। अब व्यापार की सभी जिम्मेदारियां उनके कंधों पर आ गई, जिनको उन्होंने बड़ी निपुणता और परिश्रम से निभाया। व्यापार के साथ हनुमानप्रसाद सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों से अछूते नहीं कर सके। उन्होंने कलकत्ते में विद्यमान-हिन्दू क्लब, वैश्य समाज, बड़ा बाजार पुस्तकालय तथा सावित्री कन्या विद्यालय, हिन्दी सहित्य परिषद्, साहित्य संवर्द्धिनी समिति आदि के संचालन में तन मन धन से सहयोग दिया। 19 जुलाई 1905 को बंगाल के विभाजन की घोषणा की गई। इससे सारा बंगाल क्रोधाग्नि से जल उठा। इस प्रान्त के हर भाग से लोग कुर्बानियां देने के लिए आगे आये। हनुमानप्रसाद ने उसमें भी सक्रिय भाग लिया।

हनुमान प्रसाद को जब पता चला कि वस्त्रों में चिकनाई लाने के लिए चर्बी का प्रयोग किया जाता है तब उन्होंने विदेशी वस्त्रों को पहनने का बहिष्कार किया और मोटी खादी और हाथ से बनाए गए वस्त्रों को अपनाया। इसी दौरान उन्होंने मारवाड़ी युवकों के साथ मिलकर 'मालवाड़ी सहायक समिति' का गठन किया जिसका बाद में नाम बदलकर 'मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी' कर दिया गया।

सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति को हर प्रकार के लोगों से सम्पर्क रखना पड़ता है उनकी छवि अध्यात्मिक विभूति के रूप में थी। सन् 1916 में 26 अगस्त को मैं. आर. बी. रोड़ा एण्ड कम्पनी के कर्मचारी श्रीशचंद्र ने जर्मनी से आये एक पार्सल की दस पेटियां जिसमें 50 पिस्तौलें, 46 हजार कारतूस बन्दरगाह के कार्यालय से छुड़वाकर बैलगाड़ी में लदवाए। श्रीशचन्द्र स्वयं क्रान्तिकारी समिति का सदस्य था। उसके सहयोग से वे पेटियाँ रास्ते में क्रांतिकारियों ने गायब कर ली। प्रभुदयाल हिम्मत सिंह ने कुछ कारतूस हनुमान प्रसाद पोद्दार की बिड़ला एण्ड कम्पनी की गद्दी पर चुपचाप पहुंचा दिये। कलकत्ता की पुलिस श्रीशचन्द्र को मुखाबिर बनाने में सफल हो गई। उसकी सूचना के आधार पर 26 जुलाई 1914 को छापा मारकर कारतूस बरामद करके, हनुमान प्रसाद के साथ अन्यों को गिरफ्तार किया। भारत रक्षा कानून के आधीन उनको जेल की सजा सुनाकर अलीपुर जेल से शिमलापाल (बाकुंडा) जेल में भेज दिया गया। यहां उन्होंने पौने दो वर्ष व्यतीत किये। बाकुंडा में हनुमान प्रसाद के मौसेरे भाई जयदयाल गोयन्दका व्यापार करते थे और उनको खाने-पीने का सामान भेजते थे। गोयन्दका धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे और प्रतिदिन गीता का पाठ करते थे। इस निरन्तर मुलाकात से उनको हनुमानप्रसाद की प्रवृत्ति की जानकारी मिलती रही। वे गीता के 68 और 69 श्लोक के अनुसार इसका प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। हनुमानप्रसाद ने पूर्व में एक बार बाबू राव विष्णुराव पराडकर के सहयोग से भगवत गीता की प्रतियां बटवाई थी। इन दोनों में समान रूचि होने के कारण संबंध प्रगाढ़ हो गया। आरम्भ में गोयन्दका ने गीता की पांच हजार प्रतियां छपवाई। मुद्रण में त्रुटियों के कारण उन्होंने अपना प्रिटिंग प्रेस लगाने की आवश्यकता समझी। श्रीमन् घनश्यामदास जी जालान गोरखपुर में रहते थे। उनके सुझाव पर वहां उर्दू बाजार में एक प्रिटिंग प्रेस की स्थापना की। इसके लिए 'गोविन्द भवन कार्यालय' नाम से ट्रस्ट पंजीकृत कराया और 1923 से गीता का प्रकाशन आरम्भ हो गया। 1926 में कल्याण पत्रिका का मुद्रण व प्रकाशन



हनुमानप्रसाद पोद्दार की देख रेख में होने लगा। इस पत्रिका के माध्यम से पोद्दार जी का दिव्य रूप सामने आया। हनुमानप्रसाद पोद्दार के सौम्य और मित्रवत् व्यवहार के कारण सब इनको 'भाई जी' कहकर पुकारने लगे। भाई जी ने 'कल्याण' पत्रिका के लगभग 44 विशेषांक निकाले जिनमें पद्मपुराणांक, मार्कण्डेय, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, नारद-विष्णु-पुराण, देवी-भागवत्, योग-वशिष्ठ-शिव पुराण, ब्रह्म-वेर्क्त पुराण, अग्नि-गर्ग-संहिता, नरसिंह-पुराण आदि ग्रन्थों को सरल भाषा में प्रकाशित करके जन साधारण को इन धर्मग्रन्थों के अध्ययन का अवसर दिया। इससे 'कल्याण' पत्रिका की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि उन दिनों इसकी सदस्यता दो लाख तक पहुंच गई थी। उन्होंने अपने जीवनकाल में लगभग पौने-छः सौ विभिन्न आकार-प्रकार की पुस्तके मुद्रित की। हिन्दू-धर्म की संस्कृत की पुस्तकों को संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी भाषा में अनुवाद के साथ प्रकाशित करवाया। इसमें क्लिष्ट धार्मिक पुस्तकें जनसाधारण को समझ आने लगने से उनको घर-घर पहुंचने में देर नहीं लगी। श्रीमद्भागवत् गीता व श्रीरामचरितमानस के विभिन्न आकारों के संस्करण करोड़ो की संख्या में पहुंच गए। भाई जी ने तुलसीदास व सूरदास के साहित्य लोकप्रिय बनाए। इन ग्रन्थों को साधारण आय वाला खरीद सके, इसलिए मूल्य बहुत सस्ता रखना आवश्यक था। इसके लिए धन का प्रबन्ध अन्य स्रोतों से किया। आयुर्वेद दवाईयां, चर्मरहित जूतों, लाखरहित चूड़ियों और कपड़ों की दुकाने खोली गई। पुस्तकों के लिए सस्ता कागज प्राप्त करने के लिए टीटागढ़ पेपर मिल से कागज सीधा मंगवाने का प्रबंध किया। इस प्रकार कालांतर में गीता प्रेस पैसों के मामले में किसी के दान आदि पर निर्भर नहीं रहा।

अपने धार्मिक पुनीत कार्यो से , हनुमानप्रसाद पोद्दार सभी के आदरणीय पात्र रहे। महात्मा गाँधी और मदन मोहन मालवीय से मुलाकातें होती रहती थी। मालवीय जी ने तो प्रसन्न होकर किसी शुभ कार्य करने से पूर्व 'नारायण नारायण' शब्द का पांच बार उच्चारण करने का गुरू मंत्र प्रदान किया था। इस महान् आत्मा पर मृत्यु ने कोई करूणा प्रदर्शित नहीं की। उनका देहावसान 22 मार्च 1971 को पेट की बीमारी के कारण पावन गंगा के किनारे पवित्र पावन स्थान ऋषिकेश में हुआ। अनेक डॉक्टरों और वैद्यों के उपचार कुछ नहीं कर पाये। ऐसी पवित्र आत्मा संसार में विरला ही पैदा होती है।

# (19) श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'

**भारत सरकार ने श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' के सम्मान में 4-3-1997 को 1 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का जन्म सम्वत् 1953, भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी (तदानुसार 16 सितम्बर 1896) को कानपुर जिले के नर्वल गाँव में हुआ। उनके पिताजी का नाम विश्वेश्वर प्रसाद और माताजी का नाम कौशल्या देवी था। उन्होंने नर्वल गाँव से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'विशारद' की उपाधि प्राप्त की। उनको कविता आदि लिखने की योग्यता नैसर्गिक रूप में प्राप्त हुई थी। इससे उन्होंने जीवन के आरम्भिक समय में लिखना शुरू कर दिया था। प्रारब्ध ने अपना खेल दिखाया। उनके पिताजी श्री विश्वेश्वर प्रसाद को किसी ने भविष्यवाणी के रूप में बताया कि यदि उनका पुत्र कविता आदि लेखन करता रहेगा तो उसके नेत्र या कान नष्ट हो जायेंगे। उनके पिताजी ने श्यामलाल गुप्त को मोहवश कविता आदि लिखने से रोका। गुप्त जी ने हर गीतिका, सवैया, धनाक्षरी आदि छन्दों में रामकथा के बाल काण्ड की रचना की थी, जिसको उनके पिताजी ने कुए में फेंक दिया था। इस प्रकार हिन्दी साहित्य जगत को भारी क्षति हुई। पार्षद जी गणेश शंकर 'विद्यार्थी' द्वारा सम्पादित 'प्रताप' के नियमित पाठक थे। यह सम्पादक उस समय की ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों और अन्यायों को निडरता से लिखते थें 'पार्षद' जी अपनी रचना इस पत्र को भेजते और गणेश शंकर विधार्थी जी प्रताप समाचार पत्र में प्रमुखता से छापते थे। पार्षद जी 1914 में कानपुर शहर में म्युनिसिपल बोर्ड के प्राइमरी स्कूल में नियुक्त हुए। प्रशिक्षण से पूर्व बोन्ड देने से उन्होंने इंकार कर दिया जिससे त्याग पत्र देना पड़ा। पार्षद जी शिक्षा को बहुत महत्व देते थे। उन्होंने 'दोसर वैश्य इंटर कालेज' की स्थापना की ओर संचालन भी किया। 1919 में गांधी जी के आह्वान पर सक्रिय राजनीति में आये और फतेहपुर को कार्य क्षेत्र चुना। पार्षद जी 43 बार जेल गये। सर्वप्रथम 1921 में असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार कर लिए गये। 1930 और 1944 वर्ष जेल यात्रा की और 1932 तथा 1942 में फरार होकर अज्ञातवास रहे। एक असामाजिक व्यक्ति के विरूद्ध रचना लिखने के कारण 400/ रू. जुर्माना और जेल जाना पड़ा।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने झंडा ऊंचा रहे हमारा' गाने की रचना 1924 ई. में



की थी जिसके पीछे एक घटना मुख्य रूप से प्रेरणा का स्रोत थी। 1923 में कांग्रेस पार्टी का फतेहपुर जिला अधिवेशन फतेहपुर में दो दिन के लिए निश्चित था। इसकी अध्यक्षता मोती लाल नेहरू ने करनी थी। पहले दिन की अध्यक्षता के दिन उनको तार द्वारा बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन में भाग लेने के लिए बुला लिया गया। फतेहपुर जिला अधिवेशन के दूसरे दिन के अध्यक्ष के लिये विद्यार्थी जी को निवेदन किया गया। गणेश शंकर 'विधार्थी' ने उस अधिवेशन में जो भाषण दिया उसे ब्रिटिश राज ने विद्रोहात्मक मानकर मुकदमा चलाया और उनको एक वर्ष के कारावास की सजा मिली।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को मिली इस सजा के लिए स्वयं को दोषी मानते थे। विद्यार्थी जी जेल से मुक्ति के पश्चात् जब 'पार्षद' जी से मिले तो कहा, ''हमारे पास झंडा गीत नहीं है, तुम क्यों नहीं लिख देते।" लेखक और कवि आदि की अपनी मजबूरी होती है। पुनः जब 'पार्षद' जी विद्यार्थी से मिले तो उनको व्यंग्य सुनना पड़ा और यह वायदा करना पड़ा कि झंडा गीत अगले दिन मिल जायेगा। 'पार्षद जी' पहले से विद्यार्थी जी की जेल यात्रा के कारण स्वयं को दोषी मान रहे थे जब ये कटु शब्द सुनने पड़े तो रात को नींद नहीं आई। रात के आखिरी पहर में उन्होंने कागज और कलम लिया और एक साथ दो गीत लिख दिये। पहला गीत 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' और दूसरा 'राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति, राष्ट्र पताका नमो नमो।'' गणेश शंकर विद्यार्थी अपनी धुन के पक्के थे। उन्होंने पार्षद जी के वायदे के अनुसार अगले दिन डॉ. जी.जी. जोग, गंगा सहाय चौबे और हमीद अली को उनके घर झंडा गान लाने के लिए भेजा। पार्षद जी' झंडा गान' के कारण अगले दिन सो सके थे। उन तीनों को उनको उठाना पड़ा तब उनको प्राप्त हुआ।

गणेश-शंकर विद्यार्थी जी झंडा गान पाकर बहुत खुश हुए। उन्होंने सर्वप्रथम उसे राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन को दिखाया। उन्होंने 'झंडा ऊँचा रहे हमरा' गीत से दो पद हटाकर स्वीकृत किया। तत्पश्चात् विद्यार्थी जी ने इस गीत को 'प्रताप' समाचार पत्र के प्रथम पृष्ट पर प्रकाशित करवाया। 1925 के कांग्रेस सम्मेलन में इस गीत को पहली बार गाया गया। इसके पश्चात् तो यह गीत देश के हर देशभक्त की जुबान पर था। जहाँ पर यह गाया जाता वहाँ प्रत्येक जवान मस्ती से चूर हो जाता। झंडे को ऊँचा बनाये रखने के लिए देशवासी शहीद होने में गर्व का अनुभव करने लगे थे। यह गीत राष्ट्र स्वाधीनता संग्राम के लिए असीम प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने एक अज्ञात और साधारण जीवन व्यतीत किया और 10 अगस्त 1977 को स्वर्गवास हुआ।

# (20) सन्त कवि सुन्दरदास

**भारत सरकार ने सन्त कवि सुन्दरदास के सम्मान में 8 नवम्बर 1997 को 2 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

सन्त सुन्दरदास का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी (रामनवमी) को दोपहर के समय सम्वत् 1653 तदानुसार ईस्वी सन् 1596 में राजस्थान प्रान्त के जयपुर जिले के दौसा नगर में हुआ था। उनके पिता जी का नाम चौखा अपर नाम परमानन्द और माता जी का नाम सति था। यह परिवार खंडेलवाल वैश्य के ढूसर गौत्र से था और उनकी माता जी सोखिया गोत्र की थी। वैश्यों का खंडेलवाल वर्ग 'खंडेल' स्थान से निकासी के कारण जाना जाता है इसमें 72 गोत्र हैं जिनको ऋषि, प्रवर और पूज्य देवियों से जोड़ा गया है। उनमें अटोरिया, काठ, खारवाल, डांस, चामानी, धीया, बम्ब, रावल, माली, सेठी (सोन) हल्दिया आदि कुछ उदाहरण हैं।

एक किंमवदन्ती के अनुसार सन्त दादू के शिष्य जग्गा ने अपने गुरू की आज्ञानुसार, सती के गर्भ से जन्म लिया था और सन्त सुन्दरदास कहलाए। उन्होंने दादू के शिष्य जगजीवन से दीक्षा और आध्यात्मिक उपदेश प्राप्त किया। 6-7 वर्ष की आयु में ही जन्म स्थान दौसा के पास टहलड़ी में रहने लगे और दादू-वाणी की सीख लेनी आरम्भ की। कहते हैं कि उनमें पूर्व जन्म की भांति मेधावी वृत्ति थी और ब्रह्मचर्य, विद्वता और योग के सभी गुण थे। आध्यात्मिक रचना करने की योग्यता बचपन में ही दीखने लगी। सम्वत् 1664 अर्थात् 11 वर्ष की आयु में देश की विद्यानगरी काशी में ज्ञानार्जन के लिये गये। वहाँ उन्होंने संस्कृत, हिन्दीयोग, व्याकरण, कोष, षटशास्त्र, पुराण और वेदों का गहन अध्ययन किया। योगाभ्यास व चिन्तन में निपुणता प्राप्त की। जहाँ उनमें काव्य में नैसर्गिक प्रतिभा थी वहीं छन्द, अलंकार, रस और सभी प्रकार की विधाओं का ज्ञान प्राप्त करके उसमें निखार प्राप्त किया। काशी में महात्माओं के सत्संग, सन्त तुलसीदास के दर्शन से लाभ उठाया। सन्त सुन्दरदास की स्मरण शक्ति और स्फूर्ति विलक्षण थी। वे अरिघाट के पास रहते थे जहाँ अब दादू-मठ विद्यमान हैं।

सन्त और जल को प्रवाहित रहने में ही लोक कल्याण होता है। सन्त सुन्दरदास ने काशी से अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् अनेक यात्राएं की। कार्तिक सुदि 14 सम्वत् 1682 के बाद, सन्त सुन्दरदास शेखावटी के फतेहपुर नगर में रहने लगे। यहाँ पर गुरूभाई डीडवाना के महात्मा प्रागदेशा का साथ मिला। वैश्य महाजन धर्म और सन्त वाणी का आदर करते हैं वहाँ के केजड़ीवाल गौत्र के वैश्य परिवार ने उनके रहने के लिए पक्का मकान बनवाया जिसके नीचे तहखाना था और पानी की समस्या के निवारण के लिए उसके आगे कुएं का भी निर्माण करवाया।



आध्यात्मिक विभूति के साथ कुछ अलौकिक और विलक्षण शक्ति होने की बातें जुड़ जाती हैं। जयपुर पर मुस्लिम नवाब का शासन था। इन्हीं कारणों से नवाब अल्फखाँ, उसका पुत्र दौलत खाँ और पौत्र तहरखाँ सन्त सुन्दरदास के परम भक्त बन गये थे। रेगिस्तान में उनकी फौज को छोटे से कमण्डल से छाछ पिलाना, घोड़ों को अस्तबल से निकलवाकर भवन के मल्बे से बचवाना, नवाब के आग्रह पर अपने आसन के एक कोने को उठवाकर सारे जयपुर का दृश्य दिखाना आदि अनेक कथाएं सन्त सुन्दरदास के बारे में कही और सुनी जाती हैं। रोगी को स्पर्श से स्वस्थ कर देने की बात भी कही जाती है। कहा जाता है कि एक बार चोर उनका पलंग, जाजमा और अन्य सामान चुरा कर ले गये। वे चोर रास्ते में ही अन्धे हो गये। पकड़े जाने पर जब उन्होंने सारा सामान छोड़ा और आगे चोरी नहीं करने का वचन दिया तब उनको पुनः दिखाई देने लगा।

सम्वत् 1710 (अर्थात् 1653 ईस्वी) में सन्त सुन्दरदास पुनः काशी गये। वहाँ रहकर उन्होंने एक महान् रचना ''ज्ञान समुन्द्र'' पूरी की। इसमें योग-साधना पर विस्तृत वर्णन हैं। यह उनके द्वारा रचित 48 रचनाओं में सर्वोतम और विस्तृत ग्रन्थ है। यह वेदान्त शास्त्र की सर्वोच्चता स्थापित करने में सफल प्रयास है। इसमें गुरूभक्ति, योग, ब्रह्मज्ञान आदि विषयों पर गूढ़ता से लिखा है। कई नीरस विषयों को 34 प्रकार के छन्दों का प्रयोग करके स्पष्ट किया है। दूसरा ग्रन्थ 'सुन्दर विलास' भी उनकी विद्वता और पांडित्यता का बोध कराता है। सन्त सुन्दरदास संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे परन्तु अपनी रचनाओं में इस भाषा का प्रयोग न करके, हिन्दी भाषा में लिखा जिसमें ब्रज, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, फारसी, मैथिली और भोजपुरी शब्दों का मिश्रण किया। इस कारण से जनसाधारण को उनकी रचनाओं को समझने में कठिनाई होती है। सन्त सुन्दरदास ने बहुत से पद विरोधाभास अलंकार में लिखे हैं। यदि पाठक प्रयोग किये शब्दों का अर्थ समझ नहीं पाता है तो ऊपरी तौर से एक गंवार का कथन प्रतीत होगा।

सन्त सुन्दरदास सन्त कबीर की भांति ईश्वर को निराकार मानते थे। एक ईश्वर के अतिरिक्त उन्होंने देवी देवता के बारे में एक भी शब्द नहीं कहा। वे धार्मिक विवाद को पसन्द नहीं करते थे। श्रोताओं के प्रश्नों का उत्तर बड़े ही शान्त भाव से देते थे। वे अपनी परिस्थिति से सदैव सन्तुष्ट रहे।

वैश्य समाज से दादू पंथी, संत सुन्दरदास की कृतियों में असीम आस्था रखते हैं। उनकी रचनाओं से सामूहिक कीर्तन करते है। उनमें उच्च कोटि की शिक्षा होती है जैसे–

**ईश्वर एक और नंहि कोई, ईश शीष पर राखहु सोई।**
**तामें जाति वर्ण है नाहिं, द्वेत भाव कहाँ समाँहि॥**

सन्त सुन्दरदास का देहावसान कार्तिक शुक्ल अष्टमी (गोपाष्टमी) बृहस्पतिवार के तीसरे पहर बि. स. 1746 अर्थात् सन् 1689 को हुआ। वे हिन्दु और मुसलमानों आदि में परम आदरणीय रहे।

# (21) डॉ. जगदीश चन्द्र जैन

**भारत सरकार ने डॉ. जगदीश चन्द्र जैन के सम्मान में 28 जनवरी 1998 को 2 रूपये मूल्य की 4 लाख टिकटें जारी की।**

डॉ. जे.सी. जैन का जन्म सन् 1909 में उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव बसेड़ा में हुआ। बाल्यकाल में ही उनके पिता चल बसे थे। आय के साधन के नहीं होने के कारण परिवार को विपन्नता के कारण कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। डॉ. जगदीश चन्द्र जैन ने प्रारम्भिक शिक्षा पाठशाला और गुरूकुल में प्राप्त की थी, जहाँ उनको आदर्श संस्कार प्राप्त करने का अवसर मिला। तत्पश्चात् उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत, जैन साहित्य और आयुर्वेद का अध्ययन किया।

विद्यार्थी समाचार पत्रों से ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा भारतीय लोगों पर अत्याचारों की जानकारी प्राप्त होने पर भारी आक्रोश और क्रोधित हो उठते थे उनमें देश भक्ति की भावना कुछ भी करने को प्रेरित करती थी। इसी क्रम में डॉ. जैन ने सन् 1929 में पढ़ाई छोड़ दी और वे महात्मा गांधी द्वारा चलाए जा रहे सत्याग्रह आंदोलन में कूद पड़े। बाद में एक शोध छात्र के रूप में शांतिनिकेतन स्थित विश्वभारती विश्वविद्यालय में दाखिल हुए। यहीं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सान्निध्य में उनका बौद्धिक विकास हुआ तथा भारत की विरासत की महानता की अनुभूति हुई। उन्होंने ब्रिटिश भारत की रियासत अजमेर में एक स्कूल अध्यापक के रूप में अपना कैरियर शुरू किया। यहाँ पर मुख्याध्यापक ने उसके द्वारा गांधी टोपी पहनने पर आपत्ति की। डॉ. जैन ने आत्म सम्मान के सामने नौकरी के गौण माना और तुरन्त उस पद से त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् उन्होंने राम नारायण रुईया कॉलेज, बम्बई में 30 वर्षों से अधिक समय तक हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत के प्रोफेसर के पद पर कार्य किया। डॉ. जैन एक सच्चे गांधीवादी व्यक्ति थे। उनको महात्मा गांधी के समीप रहने का अवसर मिलता रहता था। वे राष्ट्रपिता की हत्या के प्रत्यक्षदर्शी थे इसलिए वे सन् 1948 में, लाल किला, दिल्ली में गांधीजी की हत्या के सिलसिले में चले मुकदमें में मुख्य गवाह थे। सन् 1970 में डॉ. जैन ने कील (जर्मनी) में भारतीय विद्या विभाग के आमंत्रित अतिथि प्रोफेसर के रूप में 4 वर्षों तक कार्य किया। सन् 1980 में वे भारतीय दर्शन पर व्याख्यान देने ब्राजील गए। उनकी पुस्तक 'जाइनिज्म' (जैनधर्म) का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद किया गया। इस प्रकार डॉ. जगदीश चन्द्र जैन को धर्म के विषय में विस्तृत ज्ञान था। उनको जैन विचारधारा और प्राकृत भाषा तथा साहित्य का विश्वविख्यात विशेषज्ञ माना जाता है। डॉ. जैन ने अनेक शोध पत्रों के अतिरिक्त 80 से अधिक पुस्तकें लिखीं। उन्हें अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार मिले, जैसे सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, उत्तर प्रदेश शासन पुरस्कार, ज्ञान भारती पुरस्कार, अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा पुरस्कार आदि हैं।



# (22) आचार्य तुलसी

**भारत सरकार ने आचार्य तुलसी के सम्मान में 20 अक्टूबर 1998 को 3 रुपये मूल्य की 14 लाख डाक टिकटें जारी की।**

आचार्य तुलसी का जन्म 20 अक्टूबर 1914 को राजस्थान प्रान्त के नागौर जिले के एक कस्बे लाडनूं में हुआ। उनके पिता जी का नाम झूमरमल और माता जी का नाम वंदना था। आचार्य तुलसी के परिवार ने दुख और दीनता के समय का सामना करना पड़ा। वे जब मात्र तीन वर्ष के थे उसके पितामह राजरूप जी का और पांच वर्ष की आयु होने पर पिताजी का साया उठ गया। 6 (छ:) भाइयों के परिवार के जीवनयापन का उत्तरदायित्व उसकी मां और बड़े भाई मोहन लाल ने सम्भाला। उस समय उन पर कर्ज की देनदारी थी। मोहनलाल बहुत बुद्धिमान और साहसी युवक थे। उसने परिवार के खर्चों को पूरा करते हुए सारे कर्ज को चुकाया। घर में बड़ों के आचरण और दिनचर्या का परिवार के सदस्यों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है उनकी माताश्री वन्दना जी का प्रतिदिन सतियों के दर्शन करने, व्याख्यान सुनने और सेवा करने में समय व्यतीत होता था। वह इस कार्यों में बालक तुलसी को साथ रखती थी और धार्मिक आचरण के लिए उत्साहित करती थी। उन्होंने बचपन से ही बीड़ी, सिगरेट, चिलम, तम्बाकू, भांग, गांजा, सुलफा और शराब आदि नशीली वस्तुओं का परित्याग रखा। कभी पान तक नहीं खाया। आर्चाय तुलसी को विद्याध्ययन में बड़ी रूचि थी वे गांव में स्थित नन्दलाल जी ब्राह्मण की पाठशाला में 6-7 वर्ष की आयु में जाने लगे थे। तत्पश्चात् हीरालाल जी जैन के यहाँ पढ़े। उन्होंने हिन्दी और गणित के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा कभी नहीं पढ़ी। आचार्य तुलसी खेलकूद में कम ही जाया करते। उनमें तेज समझ और नेतृत्व देखकर, अध्यापक अन्य छात्रों को पढ़ाने, पुस्तकों के विक्रय आदि का काम करने देते थे। इस प्रकार बाल-जीवन में ही उनमें प्रौढ़ता निखर उठी थी। बचपन में ही उन्होंने पच्चीस बोल, चर्चाहित शिक्षा के पच्चीस बोल, जाणपण के पच्चीस बोल, नमस्कार मंत्र, सामायिक, पंचपद वंदना आदि कण्ठस्थ कर ली थी। यह राजस्थानी कहावत, "ज्ञान कण्ठा और दाम अण्टा" के अनुरूयप बहुत उपयोगी सिद्ध हुई।

आचार्य तुलसी ने बचपन में ही उच्च चरित्र और आदर्श आचरण अपनाया।

आर्थिक तंगी के कारण गायों को बेच देना पड़ा था। जब उसकी माँ पास पड़ोस से छाछ मांग कर लाने के लिए कहती थी तो उसको बहुत बुरा लगता था। इस प्रकार के वातावरण के कारण आचार्य तुलसी ने 11 (ग्यारह) वर्ष के आयु में ही बड़े नाटकीय ढंग से दीक्षा लेने का प्रस्ताव रखा। लाडनूं में श्री कालूगणी व्याख्यान कर रहे थे। जिसमें बालक तुलसी भी भाग लेने गया। व्याख्यान के बीच ही खड़े होकर बोले– "गुरुदेव"! मुझे आजीवन व्यापारार्थ परदेश जाने और विवाह करने का त्याग करवा दीजिए।"

गुरुदेव कालूगणी ने कहा, "तू अभी बालक है, त्याग करना बड़ी बात है।" बालक तुलसी पर इस उत्तर से कोई प्रभाव नहीं पड़ा और बोले, "गुरुदेव! आपने त्याग नहीं करवाये, किन्तु मैं आपकी साक्षी में आजीवन व्यापारार्थ परदेश जाने और विवाह का त्याग करता हूँ।" यह ग्यारह वर्ष के बालक तुलसी का आग्रह था परन्तु गुरु जी परिवार के मुखिया की बिना लिखित अनुमति के दीक्षा नहीं दे सकते थे। बड़े भाई मोहनलाल को तार देकर बंगाल से बुलाया गया। मां और इस भाई ने बालक तुलसी को मनाने का प्रयास किया परन्तु वे सफल नहीं हुए। बालक तुलसी की दीक्षा के बाद धार्मिक ज्ञान ग्रहण और शिक्षा आरम्भ हो गई। उसके भाई चम्पालाल पहले ही दीक्षा ले चुके थे। जीवनचर्या में प्रातः चार बजे जागना और दस बजे सोना, साधुचर्या का पालन, अध्ययन, स्मरण आदि शुरू हो गया। उन्होंने 11 (ग्यारह) वर्षों में 20 (बीस) हजार श्लोक कण्ठस्थ किये। कविता का लेखन आरम्भ कर दिया। पट्टोत्सव, मर्यादोत्सव आदि विशेष अवसरों पर कविता बोलते तो श्रोता मुग्ध हो जाते। कालू उपदेश वाटिका, "भरत मुक्ति", 'आषाढभूति', अग्नि परीक्षा आदि अनेक गीति संग्रह और खण्ड काव्यों की रचना की। "जैन सिद्धान्त दीपिका", श्री भिक्षु न्यायकर्णिका" "आत्मानुशासन" महत्त्वपूर्ण धार्मिक पुस्तकें समाज को दी।

तुलसी की विद्वता और आचार-व्यवहार गुरुजी की निरन्तर निगाहों में रहा। गुरु जैन श्वेताम्बर तेरा पंथ धर्मसंघ के अष्माचार्य श्री कालूगणी ने 22 (बाइस) वर्ष की आयु में उनको धर्मसंघ का आचार्य नियुक्त किया।

तुलसी 'आचार्य' घोषित होने के बाद जैन धर्म में व्याप्त रूढ़ियों को उखाड़ने के कार्य में जुट गये। उन्होंने 2 मार्च 1949 से अनुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया, जिसका मुख्य उद्घोष "संयम ही जीवन है" था। इसमें छोटे-छोटे संकल्प शामिल थे जो मानव जीवन में चरित्र शोधन, परस्पर सद्भाव, दूसरों के लिए त्याग की भावना को पैदा करता है। इसका सभी व्यक्तियों ने स्वागत किया।



1992 में आचार्य तुलसी को 'इंदिरा गांधी एकता पुरस्कार' दिया गया। 1955 में उन्होंने जैन धर्मवैधानिक साहित्य के अनुसंधान का काम आरम्भ किया। 32 आगमों का समीक्षात्मक संस्करण प्रकाशित करवाया। 1971 में "जैन विश्व भारती" की लॉडनूं में स्थापना की जिसे भारत सरकार व विश्व विद्यालय अनुदान आयोग ने 1991 में 'मान्य विश्व विद्यालय' का दर्जा दिया और आचार्य तुलसी को प्रथम अनुशास्ता के रूप में मान्यता प्रदान की। यह आचार्य तुलसी की विद्वता और योग्यता से सम्भव हो सका।

आचार्य तुलसी ने संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी भाषा में 50 से अधिक ग्रन्थों की रचना की। वे तेरापंथ जैन धर्म के प्रचारक रहे। सभी धर्म और सम्प्रदायों को समान मानते थे। तिब्बती बौद्ध शोध संस्थान, सारनाथ की ओर से दलाई लामा ने 1992 में उनको वाक्पति (डी.लिट) की उपाधि से विभूषित किया। आचार्य पद प्राप्त करने की रजत जयन्ती के अवसर पर उपराष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 1962 में गंगाशहर (बीकानेर) में "आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट करके सम्मानित किया। उन्होंने अपनी पुस्तक "लिविंग विद ए परपज" में अणुव्रत आन्दोलन के विषय में उल्लेख भी किया था। 1974 में उनके 60 वे जन्म दिन के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने उन्हें दिल्ली में "षष्टिपूर्ति ग्रन्थ भेंट किया। 1972 में जैन संघ ने उन्हें "युग प्रधान आचार्य" की उपाधि प्रदान की और उसे भारत के राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरी की ओर से दिया गया। 1985 में राजस्थान विद्यापीठ (मान्य विश्वविद्यालय) द्वारा प्रदत्त सर्वोच्च उपाधि "भारत ज्योति" भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा उदयपुर में प्रदान की गई।

आचार्य तुलसी समय-समय पर राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में अपना योगदान देते रहते थे। उन्होंने इसके लिए लगभग 1 (एक) लाख किलोमीटर पदयात्रा की। 1966 में तमिलनाडू में हिन्दी भाषा का विरोध, "राजीव लोगोंवाल" समझौते, 1994 में संसद में राजनीतिक गतिरोध को समाप्त करने आदि में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रकार के कार्यो से आचार्य तुलसी ने न केवल सारे देश में, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्ति की। 1994 में उन्होंने आचार्य का पद त्याग कर एक उदाहरण पेश किया। 23 जून 1997 को 83 वर्ष की आयु में गंगा शहर (राजस्थान) में आचार्य तुलसी ने महाप्रयाण किया।

# (23) पोट्टि श्रीरामुलु

**भारत सरकार ने पोट्टि श्री रामुलु के सम्मान में 16-3-2000 को 3 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

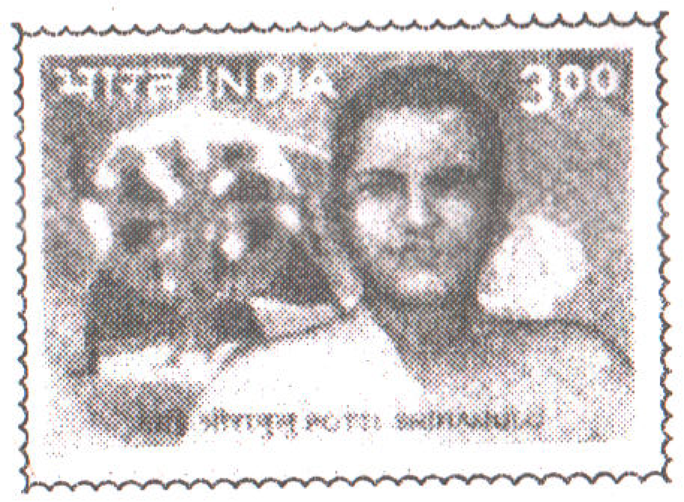


पोट्टि श्रीरामुलु का जन्म 1901 ई. में आन्ध्रप्रदेश के नेल्लौर जिले में हुआ। वे सच्चे गांधीवादी थे।

महात्मा गांधी के दर्शन तथा उपदेशों से पूरी तरह प्रभावित होकर, सभी सांसारिक अभिलाषाओं को त्यागकर स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े थे। उन्होंने अनेक अवसरों पर सत्याग्रह आंदोलन में भी भाग लिया तथा 1930 में नमक सत्याग्रह आंदोलन और 1940 में वैयक्तिक सत्याग्रह आंदोलन के दौरान गिरफ्तारी दी। बाद में वे अपने गृह प्रान्त नेल्लौर लौट आए तथा कृष्णा जिले में गांधी आश्रम से जुड़ गए। उन्होंने हरिजनों के उत्थान तथा अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए स्वयं को तन-मन-धन से समर्पित कर दिया। जब उन्हें यह पता चला कि उनके गृह प्रान्त नेल्लौर में हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश की मनाही है तब गांधी जी से आशीर्वाद लेकर उन्होंने 23 दिन तक उपवास रखा जिसके परिणामस्वरूप नेल्लौर में हिन्दू समुदाय का रुढ़िवादी वर्ग उनके सामने झुक गया और हरिजनों के मंदिरों में प्रवेश की अनुमति दे दी गई। उन्होंने इसके बाद भी अनेक अवसरों पर हरिजनों के उद्धार के लिए कार्य किया तथा इस मुद्दे पर संयुक्त मद्रास राज्य की सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए 29 दिन तक उपवास रखा। यह उपवास तभी समाप्त हुआ जब मुख्यमंत्री ने यह आश्वासन दिया कि राज्य सरकार हरिजनों की दशा में सुधार लाने के लिए सभी संभव प्रयास करेगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आन्ध्र प्रदेश मद्रास प्रान्त का भाग था। पोट्टि श्रीरामुलु संयुक्त मद्रास राज्य में से पृथक आंध्र राज्य का गठन करने की आवश्यकता के बारे में पूरी तरह आश्वस्त थे तथा इस मांग को लेकर उन्होंने 19 अक्टूबर, 1952 से उपवास रखना आरम्भ किया। अट्ठानवें दिन उन्होंने उपवास के कारण अंतिम सांस ली। इस प्रकार उस मांग को लेकर उन्होंने अपने प्राण न्यौछावर कर दिए जो उनके लिए अत्यंत पवित्र थी। उनके निधन के कुछ दिन बाद केन्द्र सरकार ने घोषणा की कि संयुक्त मद्रास राज्य में से पृथक आंध्र राज्य का गठन किया जाएगा। इस प्रकार आंध्र प्रदेश को एक अलग प्रान्त देखने की अभिलाषा उनके जीवन में पूरी नहीं हो पाई। पोट्टि श्रीरामुलु आंध्र के लोगों की अभिलाषाओं के प्रतीक के रूप में याद किया जाता है। वे वास्तव में भारतीयों की उस अजेय भावना का प्रतीक थे जिससे देश को स्वतंत्रता मिली और भारतीय राष्ट्र का अभ्युदय हुआ। सरकार ने आंध्रप्रदेश के नेल्लौर जिले का नाम पोट्टि श्रीरामुलु के नाम पर रखा है।



# (24) डी.एन. जटिया

**भारत सरकार ने श्री डी.एन. जटिया के सम्मान में 11 दिसम्बर 2000 को 15 रुपये मूल्य की केवल 50 हजार डाक टिकटें जारी की।**

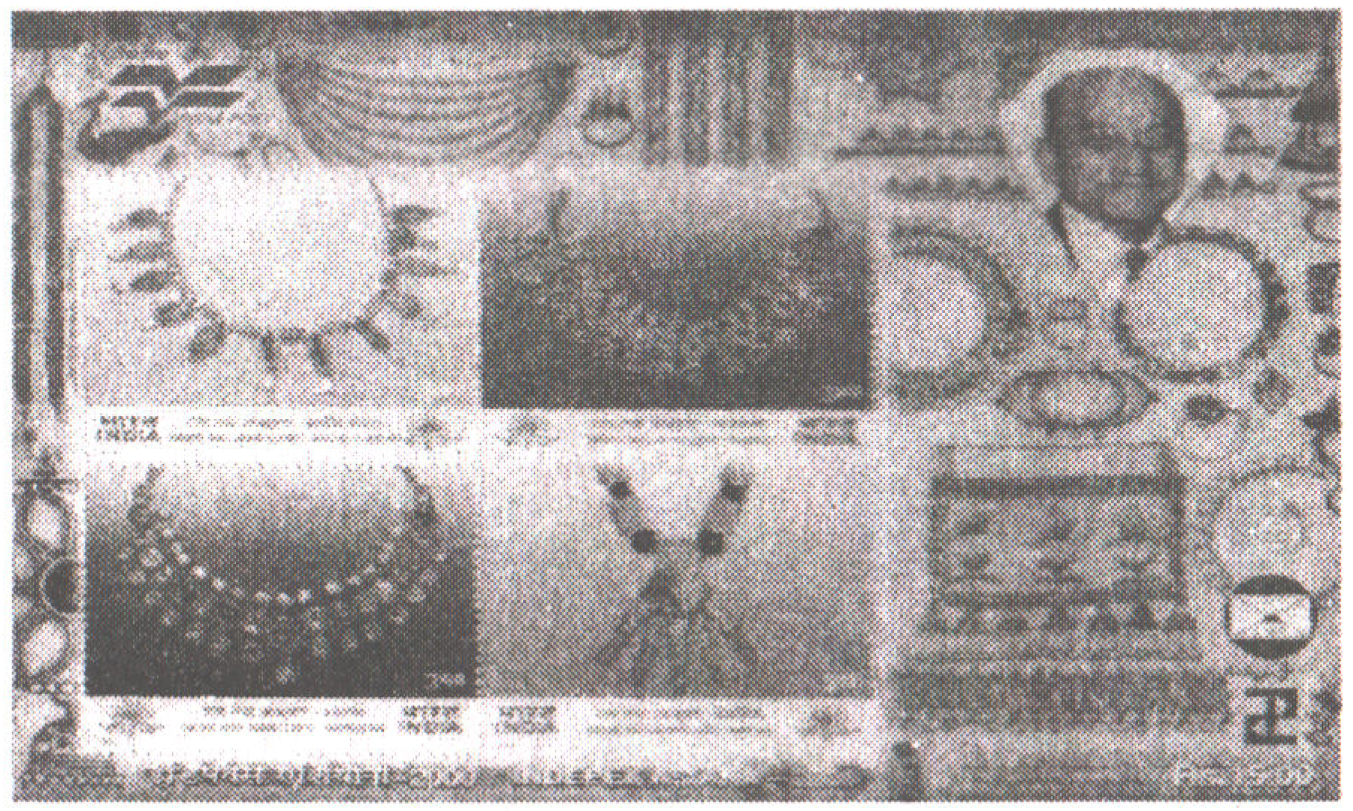

डाक विभाग की स्थापना ब्रिटिश शासन ने अपने विभिन्न विभागों के पत्र पहुंचाने के लिए की थी। जन-साधारण को भी अपने पत्र भेजने की आवश्यकता पड़ी। उस समय पालतू सफेद कबूतर का पत्र वाहक के रूप में प्रयोग किया जाता था। इस साधन से अनेकानेक खतरों का सामना करना पड़ा। इस साधन से पत्र के पहुंच जाने का पुख्ता विश्वास भी नहीं था। डाक विभाग को जनसाधारण के लिए प्रस्तुत करने के साथ डाक-टिकटों का प्रचलन आरम्भ हुआ।

डाक-टिकटों को संग्रह करना उनके डिजाइनों के बदलते रहने के साथ आरम्भ हुआ। यह ऐसा शौक है जिसे अभी जनसाधारण ने पूर्ण रूप से देश में अपनाया नहीं है। इसका सारे संसार में एक पूरा तन्त्र स्थापित हो चुका है और करोड़ों रूपयों का क्रय-विक्रय होता है। श्री डी.एन. जटिया (पूरा नाम देवकी नन्दन जटिया) एक ऐसे विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे जिन्होंने इस शौक की तकनीक को समझा और विदेशियों के एकाधिकार में सेंध लगाई। श्री जटिया का जन्म 1930 के वर्ष एक धनाढय वैश्य परिवार में हुआ। उन्होंने देश में 1975 में 'फिलाटेलिक कांग्रेस आफ इंडिया' की स्थापना की और डाक-टिकटों के बारे में विशेषता ग्रहण की। इसके आधार पर वे 1981 से 1987 तक इंटर एशिया फिलाटेलिक फ़ेडरेशन के अध्यक्ष रहे। उनके ज्ञान और निपुणता की ख्याति संसार में फैलती गई। अभी तक विश्व स्तर की संस्था पर यूरोपियनों का वर्चस्व था। डी.एन. जटिया की विद्वता अद्वितीय थी इसके आधार पर उन्होंने यूरोपियनों का एकाधिकार समाप्त करने में सफलता प्राप्त की। वे 1990 में ''इंटरनेशनल फिलाटेलिक फेडरेशन'' के अध्यक्ष बने। वे इस पर 1998 तक रहे। ब्रिटेन के सम्राट जार्ज पंचम को भी डाक टिकट संग्रह करने का शौक था। उन्होंने इस

शौक को महत्त्व देने के लिए प्रमुख डाक टिकट संग्रहकर्त्ताओं के हस्ताक्षर से एक रोल प्रारम्भ किया। इस दिनों ऐसे व्यक्ति को बहुत सम्मानित माना जाता है उसको 'आर.डी.पी. अर्थात् रोल आफ डिस्टीन्गविश्ड फिलाटेलिक' कहा जाता है। श्री जटिया ऐसे पहले भारतीय व्यक्ति हैं। जिनको यह गौरव प्राप्त हुआ।

प्रारब्ध अपने मार्ग से चलता है। इस महान विद्वान का 2 नवम्बर 2000 को देहावसान हुआ। क्योंकि डी.एन. जटिया डाक विभाग की टिकटों के निपुण विशेषज्ञ थे। इस विभाग ने उनको श्रद्धांजलि स्वरूप उसी वर्ष 11 दिसम्बर को 15 रुपये मूल्य की 50 हजार डाक टिकट जारी की। इस डाक टिकट की केवल 50 हजार टिकटें जारी करने का अर्थ यह नहीं कि उनको अन्य महापुरुषों से कम महत्व दिया गया। वरन् यदि कोई उन पर छपी टिकट को एक बार देख ले तो पता चलेगा कि वे टिकटें कितनी महत्त्वपूर्ण थीं। उसका आकार देखकर ही ठीक अनुमान लग जायेगा कि वे पत्र आदि भेजने के हेतु तो प्रयोग नहीं हुई होगी। जिन 50 हजार भाग्यशाली व्यक्तियों को उपलब्ध हुई, वे अवश्य अपने भाग्य को सराह रहे होंगे क्योंकि विशेष टिकटों का विक्रय-मूल्य हजारों रूपयों में आंका जाता है। क्या अब एक जन-साधारण व्यक्ति यह समझेगा कि डाक-टिकट संग्रह का शौक भी एक अर्जन का साधन बन सकता है?



## (25) भामाशाह

**भारत सरकार ने भामाशाह के सम्मान में 31 दिसम्बर 2000 को 3 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

भामाशाह का जन्म आषाढ़ शुक्ल दसवीं (28 जून 1547 ईस्वी) को हुआ था। वे महाराणा प्रताप से सात वर्ष छोटे थे उनके पिता जी का नाम महाजन भारमल था जो कावडिया गौत्र के ओसवाल वैश्य थे। राणा सांगा ने उनको अलवर से बुलाकर रणथम्भौर के किले का मुखिया बनाया। बाद में हाड़ा सूरजमल को यह पद प्रदान किया गया उस समय भी वे वहाँ महत्वपूर्ण कार्य करते रहे। भामाशाह के भाई का नाम तारचंद था। ये दोनों भाई वीर प्रकृति के पुरुष थे। तारचन्द गोडवाडा का हाकिम था और उस समय सादडी में रहता था। उसने सादड़ी के बाहर बावड़ी और बारहदरी बनवाई। 28 फरवरी 1572 को 32 वर्ष की आयु में महाराणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता राणा उदयसिंह का सबसे बड़ा पुत्र था। वे भटियाणी मनी से अधिक प्यार करते थे इसलिए मृत्यु से पूर्व उससे उत्पन्न पुत्र जगमाल को उत्तराधिकारी घोषित किया। महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद कुछ सरदार राणा प्रताप को गद्दी पर बैठाना चाहते थे और कुछ राणा उदयसिंह की इच्छानुसार जगमाल को चाहते थे। राणा प्रताप सबसे बड़ा पुत्र होने के कारण, सरदारों का बहुमत उसके पक्ष में रहा और उनको गद्दी पर आसीन किया गया। इस घटना से रुष्ट होकर जगमाल मुगल बादशाह अकबर से जा मिला। मुगल बादशाह राजपूतों पर आधिपत्य के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा था। उसने जगमाल का खुली बाहों से स्वागत किया और जहाजपुर का परगना जागीर में दिया।

जगमाल की भांति आमेर, बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर आदि राजघरानों ने अपनी बहिन-बेटियों के विवाह अकबर के साथ करके उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी। उनमें कंवर मानसिंह, राजा भगवान दास और राजा टोडरमल आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने कई बार राणा प्रताप से मुलाकात करने और इस दिशा में प्रयत्न किये। राणा प्रताप ने मुगलों की आधीनता स्वीकार नहीं की। इस कारण से उनके प्रकोप का सामना करना पड़ा। 21 जून 1576 को उन्होंने हल्दी घाटी में अकबर की सेना से लोहा लिया। इसमें राणा प्रताप की विजय बहुत पास थी परन्तु सरदारों से तालमेल की कमी के कारण पराजय का सामना करना पड़ा।

इसके बाद राणा प्रताप से पुनः सेना का गठन किया। कुम्भलगढ़ में अकबर की सेना से शाहबाजखाँ की कमान में सामना हुआ। यहाँ पर रसद की कमी के कारण मैदान छोड़ देना पड़ा।

मुगल बादशाह अकबर के आदमी राणा प्रताप का निरन्तर पीछा कर रहे थे इस परिस्थिति में उनको भूमिगत जीवन व्यतीत करना पड़ा। वह जसवंतपुरा से होता हुआ ढोलान नामक गांव में आकर रहने लगा। यहाँ भील जाति के व्यक्ति रहते थे और वे अपने पर्व सामूहिक रूप से मनाते थे। जिनमें उनका सरदार भी भाग लेता था। महाराणा प्रताप वीर पुरुष तो था ही और उसके अनुरुप कद और काठी भी थी। कबीले के सरदार को उसे पहचानने में देर नहीं लगी। उसने राणा प्रताप को अभूतपूर्व सम्मान दिया और प्रतिज्ञा की कि सम्पूर्ण भील जाति उसका हर प्रकार से साथ देगी। उन्होंने मुगल साम्राज्य से लड़ने में धन की कमी को स्वीकार किया। इस घटना का समाचार भामाशाह के कानों में पहुचाँ तो उसकी देशभक्ति और स्वाधीनता के प्यार ने उसको व्याकुल बना दिया। इसके लिए भामाशाह अपने कारिन्दों और सीमित सम्पत्ति साथ लेकर उसके शिविर में पहुँचा। राणा प्रताप की हालत देखकर उसकी आंखों में आंसू भर आये और बड़े ही मार्मिक भाव में बगल में सम्भाले हुए सोने के थाल में अपने खजाने की चाबी भेंट की। राणा प्रताप भामाशाहं के इस उपहार से भाव विह्वल हो गये। उसको आलिंगन में कसते हुए बोले, ''जिस देश में दानवीर भामाशाह जैसे देशभक्त हो, उस देश को कोई पराधीन नहीं रख सकता।'' राणा प्रताप ने न चाहते हुए भामाशाह का प्रस्ताव स्वीकार किया और अपनी सेना को पुनर्गठित करके 1583 ई. में सर्वप्रथम कुम्भलगढ़ को मुग़लों से छीना। मेवाड़ को प्राप्त करने के लिए पुनः हल्दीघाटी की लड़ाई हुई जिसमें राणा प्रताप की जीत हुई। इसके पश्चात मुगल बादशाह ने राणा प्रताप को जीतने का प्रयास नहीं किया। वह अपनी मृत्यु 19 जनवरी 1597 तक राज करता रहा। इस विजय के उपरान्त राणा प्रताप ने विजय स्तम्भ बनवाया जिसमें भामाशाह की दानवीरता का मुख्यरूप से वर्णन किया गया। इससे दानवीर भामाशाह सदा के लिए अमर हो गया। भामाशाह की मृत्यु 11 जनवरी 1600 को हुई। भामाशाह को 4 (चार) सौ से भी अधिक वर्ष हो गये हैं किसी व्यक्ति की दानकारिता में आज भी भामाशाह का नाम लेकर प्रशंसा की जाती है आज उनका नाम घर-घर में जाना जाता है और आदर सम्मान से पुकारा जाता है।



# (26) चन्द्रगुप्त मौर्य

**भारत सरकान ने चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्मान में 21-07-2001 को 4 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

चन्द्रगुप्त का प्रादुर्भाव 324 ईसा पूर्व माना गया है। उन्होंने मगध पर राज किया जिसकी पाटलिपुत्र राजधानी थी। वे सम्राट अशोक के पितामह थे। भारतीय मुद्रा व करन्सी नोटों पर शेर का चिन्ह अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भ से लिया गया है। चन्द्रगुप्त काल का प्रमाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। मेगास्थनीज को सेल्यूकस ने भेजा था। उसने उस काल में जो देखा उसका विवरण लिखा। दुर्भाग्य से उसके अध्याय तितर-बितर हो गये थे। जो पृष्ट प्राप्त हुए, उनसे उस काल का इतिहास प्राप्त हुआ और उनका शासन काल 'स्वर्ण-युग' कहलाया। 'मौर्य' शब्द मयूर पक्षी के नाम से निकला हुआ बताया गया है। मौर्यवंश सूर्यवंशियों से सम्बन्धित था। चन्द्र-गुप्त की वंश परम्परा की जानकारी नहीं मिलती, परन्तु मान्यता के अनुसार उनको मयुर-पोषकों के गाँव के मुखिया की पुत्री से उत्पन्न हुआ बताया गया है।

चन्द्रगुप्त के गद्दी आसीन होने से पूर्व, मगध पर नन्द राजा का शासन था वह बहुत अत्याचारी और निर्दयी था। उसके शासन काल में सिकन्दर ने भारतीय क्षेत्रों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की थी। चन्द्रगुप्त गुप्त रूप से सिकन्दर से मिला था उसका मत था कि सिकन्दर को भारतीय जनता ने जितवाया था, क्योंकि राजा जनता के पालक न होकर उसके घातक बन गये थे। चन्द्रगुप्त की भांति राजनीति के आकाश में तक्षशिला से एक ब्राह्मण पुत्र कौटिल्य (जिसे चाणक्य या विष्णुगुप्त भी कहते थे) का उदय हुआ। वह नन्दवंश का कट्टर-विरोधी था और किसी भी युक्ति से उसका सर्वनाश चाहता था। कौटिल्य ने चन्द्रगुप्त में एक शासक के सभी गुण पाये और उसे एक विशाल सेना खड़ी करने में सहायता की। नन्द पर विजय के कुछ समय बाद चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस से युद्ध छेड़ा और पराजित कर दिया। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से मित्रता कर ली जिसे रिशतेदारी में परिवर्तन अपनी पुत्री का विवाह

करके किया। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 (पांच सौ) हाथी पुरस्कार में दिये।

चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस से संग्राम के पश्चात् अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया और प्रजा की सुख-सुविधाओं के लिए कौटिल्य के सिद्धान्तों के आधार पर शासन व्यवस्था को चुस्त और दुरुस्त किया। उसके राज्य की सीमा केवल बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल तक ही नहीं थी। इसमें पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण को मिलाकर एक बड़ा साम्राज्य खड़ा कर लिया था। केरल, तमिलनाडु तथा पूर्वोतर भारत के भूभाग को छोड़कर मौर्यवंश नें पूरे उप महाद्वीप पर शासन किया। उसके आधीन उत्तर-पश्चिम के वे प्रदेश भी थे जिन पर ब्रिटिश साम्राज्य अधिपत्य प्राप्त नहीं कर पाया था। इस प्रकार चन्द्रगुप्त का साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में सागर तक फैला था पश्चिम में सौराष्ट्र तक उसकी सीमा थी। उन दिनों भारतीय सिन्धू नदी के आसपास हरात, कंधार, मकरान और काबुल थे जो पहले ईरानी राज्य के अन्तर्गत थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चन्द्रगुप्त से वैवाहिक सम्बन्ध होने के बाद इन प्रदेशों को दहेज में दिया गया था।

चन्द्रगुप्त का राजतन्त्र कौटिल्य (चाणक्य) के सिद्धान्तों पर चलता था जिसने सर्वप्रथम अर्थशास्त्र की रचना की थी जिसका दुनिया का प्रत्येक अर्थशास्त्री हर अवसर पर चर्चा करता है। कौटिल्य का दृढ़ मत था कि राजतन्त्र जनता की मन्त्रणा से सम्भव है क्योंकि एक पहिये पर कोई गाड़ी नहीं चल सकती। विभिन्न कार्यों के लिए सम्राट के परामर्श के लिए सचिव की नियुक्ति के साथ अमात्य भी बनाये जाये। कौटिल्य के अनुसार धार्मिक कसौटी से शुद्ध अमात्य को फैजदारी तथा दिवानी अदालतों का काम, धन की कसौटी पर खरा उतरने पर भंडारण-मन्त्री, प्रेम और वासना की कसौटी पर शुद्ध अमात्य को क्रीड़ा-केन्द्रों का निरीक्षक और भय की कसौटी पर निडर पाने पर 'आसन्न' के लिए नियुक्त करना चाहिए।

चन्द्रगुप्त ने तदानुसार शासन व्यवस्था स्थापित की हुई थी। वह पूरे राज्य का प्रधान शासक था। स्थानीय शासन के लिए एक परिषद् के पास पूर्ण उत्तरदायित्व था। न्यायिक कर्त्तव्यों को वह पूर्णरूप से निभाता था। सम्पूर्ण साम्राज्य के फैसलों के लिए मंत्रियों की एक परिषद् थी। चन्द्रगुप्त का राज्य प्रान्तों में विभाजित था। उसके द्वारा शासित प्रान्तों के अतिरिक्त कई क्षेत्र स्वशासित भी थे वहाँ लोकतांत्रिक सरकारें काम करती थीं। चन्द्रगुप्त गुप्तचर को बहुत महत्त्वपूर्ण



मानता था। जहाँ विदेशियों को पूरी सुविधाएं दी जाती थी वहीं उसका गुप्तचर विभाग उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखता था। उसके राजय में भू-राजस्व आय का मुख्य साधन था। नगरों में बिक्री, जन्म-मृत्यु कर, अर्थ दण्ड भी वसूल किया जाता था। इस आय का बहुलांश सेना पर व्यय किया जाता था। कारीगरों और कलाकारों का गुजारा इस सरकारी कोष से चलता था। जन कल्याण के लिए सिंचाई, सड़क, गृह निर्माण, किलेबन्दी और औषधालयों की स्थापना की। चन्द्रगुप्त ने कितनी ही जल-बावलियाँ बनवाई और शिला लेख स्थापित करवाये जो इस काल में देखे जा सकते हैं। चन्द्रगुप्त ने 24 वर्ष राज किया और 300 वर्ष ईसा पूर्व देहावसान हुआ। कावेरी नदी के तट पर सेरिंगपटम् के पास लगभग 900 ई. के दो शिलालेख मिले हैं जिनके अनुसार चन्द्रगुप्त के वहाँ पहुँचने का उल्लेख है और वहीं पर उनकी मृत्यु होना बताया गया है वहाँ राज्य में अकाल पड़ने के कारण सिंहासन रिक्त करके आना हुआ था। चन्द्रगुप्त के पश्चात् साम्राज्य पर बिन्दुसार ने राज किया और उसके बाद अशोक, दि ग्रेट, आये।

# (27) ब्रजलाल बियाणी

**भारत सरकार ने ब्रजलाला बियाणी के सम्मान में 22-6-2002 को 4 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

ब्रजलाला बियाणी जी का जन्म 6 दिसम्बर 1895 ई. को महाराष्ट्र प्रान्त के अकोला में स्थित हाथरून गांव में हुआ था। उनके पिताजी का नाम नंदलाल था। उनका परिवार राजस्थान से प्लायन करके यहाँ आकर बसा था। बियाणी जी की माताजी का प्लेग की महामारी में स्वर्गवास तब हो गया था जब उनकी आयु केवल दस वर्ष की थी। प्लेग की महामारी से बचाने के उद्देश्य से उसे उनकी बुआजी के घर सिरपुर (खानदेश) में भेज दिया गया। बियाणी जी के फुफाजी कृष्णभक्त थे और बहुत सा समय पूजापाठ में लगाते थे। उनकी दिनचर्या का बियाणी जी के ऊपर भी प्रभाव पड़ा और एक नियमित भक्त बन गये।

बियाणी जी का विवाह 14 वर्ष की आयु में सावित्रि देवी से हो गया था। उन दिनों देश की स्वाधीनता के लिए आन्दोलन जोरों पर था जिसमें बियाणी जी एल. एल.बी. की द्वितीय वर्ष की शिक्षा को छोड़कर कूद पड़े। वे महात्मा गांधी के शिष्य बन गये और जीवनपर्यन्त उनके पथ प्रदर्शन में कार्य करते रहे। उन पर जमनालाल बजाज के बाद, महात्मा गाँधी का पूर्ण विश्वास था। बियाणीजी को मारवाड़ी होते हुए भी विदर्भ केसरी कहा जाता है। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने राष्ट्र हित में कितने साहसिक कार्य किये थे। 1930 में गांधी जी के आह्वान पर विदर्भ में विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर धरने का नेतृत्व किया। जहाँ विदर्भ में अन्य महाराष्ट्रीय कौंसिलों में प्रवेश करके ब्रिटिश साम्राज्य के साथ सहयोग करते थे, बियाणी जी ने उनके दमन और अत्याचार का विरोध किया। देश में जब साइमन कमिशन आया तब उसका कड़ा विरोध किया और सी.पी. लैजिस्लेटिव कौंसिल में बहिष्कार का प्रस्ताव रखा। वे 15 वर्ष तक लगातार विदर्भ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे। यह दर्शाता है कि बियाणी जी में किस सीमा तक जनता का अखण्ड विश्वास था।

बियाणी जी स्वाधीनता आन्दोलन में चार बार जेल गये और लगभग 6 (छः) वर्ष बिताये। 1932 के सत्याग्रह आन्दोलन के लिए उनको प्रान्तीय डिक्टेटर मनोनीत किया गया। 1940 में कांग्रेस पार्टी ने भारत देश को इसके



नेताओं की बिना सहमति के महायुद्ध में शामिल हो जाने की घोषणा के विरुद्ध आन्दोलन किया था, बियाणी जी को आचार्य विनोबा भावे के बाद डिक्टेटर बनाया गया। इसमें बियाणी जी को गिरफ्तार कर लिया गया और एक वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। बियाणीजी चाहे बाहर हो या जेल में, रचनात्मक कार्य करते रहते थे। नागपुर जेल में विनोबा जी का नियमित प्रवचन होता था। बियाणी जी ने उसमें पूरा रस लिया और लिखित नोट्स लेते रहे। जिनके आधार पर पुस्तक तैयार हो गई। विनोबा जी की अनुमति से उसे 'स्वराज्य शास्त्र' के नाम से प्रकाशित करवाया। ''कल्पना कानन'' पुस्तक क़ी रचना भी उन्होंने जेल में ही की। 'धरती और आकाश' पुस्तक में 21 कल्पना-चित्रों का संग्रह है। एक अन्य रचना 'जेल में' उनके बुद्धिवाद और तर्कवाद को दर्शाता है।

ब्रजलाल बियाणी एक मारवाड़ी वैश्य थे। विदर्भ में कई बार वर्गिय और क्षेत्रवाद के विवाद उठे। वैश्यों में कौन सा वर्ग उच्च और कौन सा वर्ग निम्न है। उनमें रूढिवादिता के प्रश्न आये दिन उठाये जाते थे। विदेश से लौटकर आने पर शुद्धिकरण से मानसिक ग्लानि समाज में व्याप्त थी। बियाणी जी एक उदार, स्पष्ट और सिद्धान्तवादी व्यक्ति थे। सभी प्रकार के विरोध के बावजूद जो प्रश्न तर्क के सामने विजयी हुआ, उन्होंने उसका साथ दिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि कोलाबर और महेश्वरी वैश्य वर्ण के वर्ग है तो उनका एक दूसरे से छोटा या बड़ा होने का प्रश्न नहीं उठता। जब महाराष्ट्रियनों ने मारवाड़ी महिलाओं द्वारा आन्दोलन में भाग नहीं लेने का प्रश्न उठाया तो उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री के साथ केवल मारवाड़ी महिलाओं को आन्दोलन में शामिल किया। ब्रिटिश शासन ने एक सहमति पत्र के द्वारा निजाम का विदर्भ पर अधिपात्य स्वीकार किया था। बियाणी जी ने उसका घोर विरोध किया और निजाम के झंडे का कभी अभिवादन नहीं किया। समाज में सुधार लाने के लिए 1929 में धामण गांव में एक महासभा का आयोजन किया गया था। महिलाओं में पर्दा प्रथा का चलन था इस प्रथानुसार पुरूषों की नजरों से बचाने के उद्देश्य से वहाँ एक कनात लगा दी गई थी। बियाणी जी को यह दकियानूसी व्यवस्था सहन नहीं हुई और तुरन्त अपने हाथों से उस कनात को हटाकर फेंक दिया।

ब्रजलाल बियाणी जी सच्चे गांधीवादी थे। उसमें राष्ट्रवाद कूट-कूट कर भरा हुआ था। महात्मा गांधी के सान्निध्य में होने से उनको हिन्दी भाषा के महत्व की जानकारी मिली। बरार अहिन्दी क्षेत्र था। इस क्षेत्र में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से 'नव-राजस्थान' नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकाला। वे उच्च कोटि के साहित्य के विकास में रूचि रखते थे। इसके लिए हिन्दी मासिक

‘प्रवाह’ की स्थापना की। इन्दौर नगर में ‘विश्व-विलोक’ पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन करवाया। क्योंकि बियाणी जी महाराष्ट्र प्रान्त में पैदा हुए थे इसलिए वे मराठी भाषा में निपुण थे। जब विदर्भ में मराठी भाषा का साहित्य सम्मेलन हुआ, बियाणी जी उसके स्वागताध्यक्ष बनाये गये। इस भाषा में ‘मातृभूमि’ नाम से समाचार पत्र की स्थापना की।

देश ने 15 अगस्त 1947 को प्रतन्त्रता की बेडियों से मुक्ति प्राप्त की। ब्रजलाल बियाणी जी गांधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार रचनात्मक कार्य करते रहे। वे 30 वर्ष तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। उन्होंने विदर्भ में ‘इण्टक’ की स्थापना की। जब देश के प्रदेशों का भाषा के आधार पर पुनगर्ठन हुआ, बियाणी जी ने अलग विदर्भ राज्य बनाने का प्रस्ताव रखा। जब इसे स्वीकार नहीं किया तो कांग्रेस पार्टी से कुछ समय के लिए अलग रहे। बरार चेम्बर ऑफ कामर्स की स्थापना की। राजस्थान प्रिटिंग प्रेस के मेनेजिंग डायरेक्टर का पद सम्भाला। फैडरेशन ऑफ कामर्स की कार्यकारिणी के सदस्य रहे। पुराने मध्य प्रदेश में कई वर्ष तक वित्त-मंत्री के पद पर रहे। विदर्भ प्रदेश की लम्बे समय तक विभिन्न रूप में सेवा की तो इस प्रदेश ने उससे उऋण होने के लिए 1965 के वर्ष में 70 वर्ष की आयु में ‘‘बियाणी-ग्रन्थ’’ शीर्षक से अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया। इसमें अनेक राजनेताओं, साहित्यकारों, लेखकों, पत्रकारों, औद्योगिक घरानों और समाज सेवकों ने अपने संस्मरण देकर उसको सच्चा आदर-सम्मान दिया। उनका 27-9-1968 में निधन हुआ और भारत से एक राजनायक चला गया।



# (28) बाबू गुलाबराय

**भारत सरकार ने बाबू गुलाबराय के सम्मान में 22-06-2002 को 5 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी कीं**

बाबू गुलाबराय का जन्म सम्वत् 1944, तदानुसार 17 जनवरी 1888 ईस्वी को उत्तर प्रदेश प्रान्त के इटावा नगर में हुआ। उनके पिताजी का नाम भवानी प्रसाद और माताजी का नाम गोमती देवी था। भवानी प्रसाद जी मैनपुरी नगर में नौकरी करते थे। गुलाबराय जब ढाई वर्ष की आयु के थे तब मैनपुरी आकर रहने लगे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा इसी नगर के मिशन हाई स्कूल में हुई। हाई स्कूल कॉलेज की शिक्षा के पश्चात् ऐन्ट्रेन्स की परीक्षा आगरा नगर में आकर दी। आगे की शिक्षा के लिए आगरा कालेज और सेन्ट जोन्स कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ रहने का निजि प्रबन्ध नहीं होने के कारण वैश्य बोर्डिंग हाऊस में ठहरे। उन दिनों शिक्षा में इतना विकास नहीं हुआ था, इसलिए विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए कुछ भारतीय प्रध्यापकों के अतिरिक्त विदेशी प्रध्यापक भी नियुक्त थे। बाबू गुलाबराय को लेखक व दार्शनिक बनाने में प्रो. जोन बगारू राजू की शिक्षा का प्रभाव रहा। उन्होंने आगरा से बी.ए. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् 1913 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र विषय लेकर एम.ए. की। 1917 में एल.एल.बी. अपने पिताजी की इच्छा पूरी करने के लिए की। बाबूजी की कानून में कोई रुचि नहीं थी।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद, नौकरी प्राप्त करनी थी। नौकरी के प्रार्थना पत्र भेजने के लिए अखबार के विज्ञापन में जानकारियाँ लेनी आवश्यक था। बाबू जी ने पहली नौकरी छतरपुर रियासत में प्राइवेट-सैक्रेटरी के पद की नियुक्ति थी। कुछ समय वे वहाँ मुख्य न्यायाधीश और दीवान भी रहे। इसके लिए प्रार्थना पत्र भेजने के लिए रिक्त स्थान का विज्ञापन एक अस्पताल के समाचार पत्र ‘पायनियर’ में देखा था। बाबूजी उस अस्पताल में डॉ. तृषार्तनाथ सिंह से मिलने गये हुए थे। संयोगवश डॉक्टर साहब अस्पताल में भर्ती किये बीमारों को देखने के लिए गये हुए थे। समय व्यतीत करने के लिए वहाँ उपलब्ध समाचार पत्र पढ़ने लगे। तभी नौकरी का विज्ञापन सामने आया। जिसके आधार पर वे प्रार्थना-पत्र भेज पाये थे।

बाबू गुलाबराय को नौकरी की अवधि के दौरान अनेकों खट्टे-मीठे अनुभव हुए जिनका विवरण उन्होंने अपनी रचनाओं में दिया। उनके जीवन की दो घटनाओं ने न केवल उन पर व्यक्तिगत रूप से प्रभाव डाला वरन् उनका सारा परिवार ही आर्थिक रूप से प्रभावित हुआ। 1927-28 के वर्ष में उनकी धर्मपत्नी की भानजी की शादी थी। बाबूजी ने उस विवाह में शामिल होने के साथ अपने गृह नगर भी जाने का निश्चय किया। मेरठ जाने के छतरपुर से दो रास्ते थे। एक आगरा होकर और दूसरा लम्बे रास्ते कानपुर होकर पहुँच सकते थे। बाबूजी ने परिवार के सदस्यों के मनोरंजन के लिए घूमने के उद्देश्य से कानपुर के रास्ते यात्रा की योजना बनाई। नकद रकम के साथ उन्होंने पूर्व में खरीदा गया 45 (पैंतालीस) तोला सोना भी साथ लिया। कानपुर आकर परिवार के साथ आनन्दराम की धर्मशाला में रुके। शाम को परिवार के साथ कानपुर शहर देखने तांगे से गये और जब वापिस लौटकर आये तो सारा सोना नकदी की चोरी हुई मिली। इस प्रकार की हानि से सभी को क्या अनुभव हुआ होगा, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

दूसरी घटना, बाबू गुलाबराय के नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद हुई। उन्होंने अपने पितृस्थान जलेसर के स्थान पर आगरा आकर बसने का निश्चय किया। घरेलू सामान के साथ आगरा पहुँचकर मकान की तलाश में अनेक कठिनाइयों का सामना किया। वहीं रहते हुए स्थाई रूप से बसने के लिए निजी मकान बनाने का फैसला लिया। संयोगवश उन्होंने ऐसी जमीन खरीद ली जो बहुत नीची थी। जिसकी मिट्टी से भरवाई के पश्चात् भी आस-पास के क्षेत्र के पानी का बहाव उसी ओर था। फलस्वरूप वर्षा ऋतु में उनके मकान में पहली मंजिल की छत तक पानी भर गया था। इस परिस्थिति में उन्हें और परिवार को कितना कष्ट सहना पड़ा, यह केवल सोचा ही जा सकता है।

बाबू गुलाबराय ने अपने जीवन की सफलताओं और असफलताओं को खुले मन से स्वीकार किया है। उनके साथ, बाबूजी ने जीवन को भरपूर जिया। वे अपने मित्रों और परिजनों से हास-उपहास करने में कभी पीछे नहीं रहते थे। जीवन में 1 (पहली) अप्रैल के दिन कई बार लोगों को मूर्ख बनाने में सफल हुए। लेकिन एक बार जब दिल्ली की कुतुब रोड़ पर उनको मूर्ख बनाकर ठग लिया तो उसका भी वर्णन करने से नहीं चूके। बाबू गुलाबराय में यह विशेष गुण देखने में आया। बाबू गुलाबराय ने आगरा नगर में जीवन के संघर्ष के साथ लोगों की निस्वार्थ सेवाऐं भी की। जैन बोर्डिंग हाउस के आनरेरी वार्डन का पद सम्भाला। सेंट जॉन्स कालेज में बिना कुछ अर्थार्जन के विद्यार्थियों को हिन्दी



पढ़ाई। इस नगर से प्रकाशित हिन्दी साहित्य की मासिक पत्रिका 'साहित्य संदेश' का सम्पादन किया। आगरा की 'नगरी प्रचारिणी सभा' में साहित्य रत्न और साहित्य विशारद की कक्षाओं का अवैतनिक अध्यापन कार्य किया। बाबू गुलाब राय ने इन अनेक जिम्मेदारियों के बावजूद पुस्तकों का लेखन भी किया। कुछ पुस्तकें तो 'स्वान्त सुखाय' लिखी और शेष पुस्तकों की रचना परिवार और स्वयं के जीवनयापन के लिए की जैसे 'प्रबन्ध प्रभाकर', 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' 'विज्ञान वार्ता' और 'हिन्दी नाट्य विमर्श' आदि, ये उनकी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तकों की रचना थी जिनकी बहुत मांग रहती थी। बाबूजी की पुस्तकों में सामान्य छात्र से लेकर उच्चतर स्तर एम.ए. की कक्षाओं के अध्ययन योग्य सामग्री होती थी। उन्होंने अनेक निबन्ध लिखे। उनके ये निबन्ध आलोचनात्मक, साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक और मनौवैज्ञानिक विषयों का बखूबी विवेचन और विश्लेषण करते थे। इस विद्वता का संज्ञान लेते हुए आगरा विश्वविद्यालय ने सन् 1957 को उन्हें डी. लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

बाबू गुलाबराय ने स्वीकार किया है कि लेखन कार्य में लाने वाले इटावा के मित्र सूर्यनारायण और फिरोजाबाद के सुहृदयवर प्रसाद जी का विशेष हाथ था। बाबूजी ने कोई कहानी नहीं लिखी। उनकी पहली पुस्तक 'पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास' 1912 में प्रकाशित हुई जो दर्शन शास्त्र पर महत्वपूर्ण पुस्तक थी। इसके पश्चात् इसी प्रकार की शान्तिधर्म, मैत्रीधर्म, गांधीय मार्ग और मन की बातें पुस्तकों की रचना की। बाबूजी ने 1910 में लिखना आरम्भ किया और जीवन पर्यन्त 50 वर्ष तक लिखते रहे। 'ठलुआ क्लब' 1921 में लिखी गई थी जिसकी साहित्यिक जगत में बहुत प्रशंसा हुई। मुंशी प्रेमचन्द ने उसे चार्ल्स डिकिन्स के पिकनिक पेपर पर आधारित बताया। साहित्य और शिक्षा के क्षेत्रों में सेवा करते हुए बैशाख कृष्ण चतुर्थी सम्वत् 2020 तदानुसार 13 अप्रैल 1963 को उनका स्वर्गवास हुआ।

## (29) आनन्द ऋषिजी

**भारत सरकार ने आनन्द ऋषिजी के सम्मान में 9 अगस्त 2002 को 4 रुपये की मूल्य 4 लाख टिकटें जारी की।**

आनन्द ऋषि जी का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर जिले के चिंचोडी (शिराल) नामक गांव में विक्रम स. 1997 श्रावण शुक्ल प्रतिपदा तदानुसार 25 जुलाई 1900 में हुआ। उनके पिताजी का नाम देवीचन्द और माताजी का नाम हुलसादेवी गुगलिया था। उनका बचपन में 'नैमीचन्द'' नाम रखा गया था। बाल्यकाल में ही उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। इसका नेमीचन्द के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे जीवन की सार्थकता की खोज में लग गये। इस छोटी ही आयु में उनमें परिपक्वता आ गई थी। वे आध्यात्म और आत्ममंथन में लगे रहने लगे। उनको वैवाहिक जीवन, पारिवारिक बन्धन और प्रतिदिन के कार्यकलापों के पीछे भाग दौड़ व्यर्थ लगती थी। उनकों चारों और अशान्ति जैसे ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा अत्याचार और दमन और विश्व महायुद्ध के कारण नजर आ रही थी। उसी अवधि में उनके पिताजी देवीचन्द का स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। इस घटना ने उसके धैर्य को हिला डाला। जब उनकी आंखों के देखते-देखते उसके पिताजी ने अपने प्राण त्याग दिये तो जीवन की इस क्षणभंगुरता ने नेमीचन्द में वैराग्य के भाव उत्पन्न कर दिये। ऐसे समय चिंचोडी में श्री रत्न ऋषि का आगमन हुआ। उन्होंने नियमित रूप से सत्संग में भाग लिया और उनके प्रवचनों से बहुत ही प्रभावित हुए। उनकी अभी 13 (तेरह) वर्ष की आयु थी परन्तु उनमें ग्राह्य विलक्षण बुद्धि थी। उन्होंने रत्न ऋषि से दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। रत्न ऋषि उस अल्पायु बालक के प्रस्ताव पर आश्चर्य चकित थे। वे तत्काल कुछ उत्तर नहीं दे सके। उन्होंने कुछ समय उनको परखने और समझने में लगाया और दीक्षा प्रदान कर दी। उनका दृढ़ संकल्प उनको इसमें सफल करने में काम आया।

रत्न ऋषि के आधीन, आनन्द ऋषि को आध्यात्मिक शिक्षा मिलती रही। उन्होंने जैन धर्मग्रन्थों के साथ-साथ संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। वे मराठी और हिन्दी भाषा तो जानते ही थे। उनके अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में निपुणता प्राप्त की। शिक्षा ने उनमें एक नया प्रकाश उत्पन्न कर दिया था और वे शिक्षा प्रसार को महत्व देने लगे थे।



उन्होंने अनेक शैक्षणिक और धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की, जिनमें श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री त्रिलोक जैन विद्यालय और श्री अमोल सिद्धान्तशाला, पाथरड़ी, अहमदनगर प्रमुख हैं। पूना अस्पताल में एक-ब्लड बैंक, उनके प्रयासों से स्थापित हुआ। आनन्द ऋषि जी संगठन हेतु अपना योगदान देते रहे। उन्होंने भारतभर में पैदल भ्रमण किया। श्रमणसंघ को शक्तिशाली बनाया। उनकी वाणी में अद्भुत मिठास था। वे अपने प्रवचनों में अन्धविश्वास और रूढ़िता पर खुलकर व्याख्यान देते थे। उनके सान्निध्य में आने वाला उनका परमभक्त बन जाता था वे परोपकार और जनकल्याणकारी कार्यों के लिए प्रेरणा देते थे। उनको 1965 में आचार्य की उपाधि प्राप्त हुई।

आनन्द ऋषि महाराज के आगमन की नगरों, कस्बों और गांवों में प्रतीक्षा होती रहती थी। जब उनका 28 मार्च 1992 में स्वर्गवास हुआ वे अहमदनगर में ही थे। मानव श्रेष्ठ मुनि के उपदेश लोगों में आज भी चर्चा का विषय है।

# (30) नरेन्द्र मोहन

**भारत सरकार ने नरेन्द्र मोहन जी के सम्मान में 14 अक्टूबर 2003 को 5 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

नरेन्द्र मोहन जी का जन्म 10 अक्टूबर 1934 को उत्तर प्रदेश प्रान्त के जिला जालौन के काल्पी गांव में हुआ। उनके पिताजी का नाम पूर्णचन्द्र गुप्त और माताजी का नाम श्रीमति लक्ष्मी देवी था। परिवार में पांच भाई और दो बहनें थीं। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने 1954 में बी.काम. की परीक्षा बी. एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर से उत्तीर्ण की। इसी नगर में परिवार आकर रहने लगा जहाँ पूर्णचन्द्र गुप्त जी ने 1947में एक हिन्दी समाचार पत्र 'दैनिक जागरण' का प्रकाशन आरम्भ किया। नरेन्द्र मोहन ने 1956 में इसी नगर के डी.ए.वी. कालेज से एम.काम. की उपाधि प्राप्त की और अपने पिताजी के समाचार पत्र का भार सम्भालने के उद्देश्य से 1962 में पत्रकारिता प्रशिक्षण के लिए अमेरिका गये। इससे पूर्व, नरेन्द्र-मोहन जी सांस्कृतिक कार्यक्रमों और उनसे सम्बन्धित आयोजनें में रुचि लेने लगे थे। 1960 में रोटरी गर्वनर डॉ. सीताराम जयपुरिया के साथ रोटरी सम्मेलन में भाग लेने के लिए पाकिस्तान की यात्रा की। 7 नवम्बर से 18 नवम्बर 1960 तक दिल्ली में इंटरनेशनल प्रेस इंस्टीट्यूट, जूरिख, स्विटजरलैंड द्वारा आयोजित सेमिनार में भाग लिया और प्रमाण पत्र प्राप्त किया।

अमेरिका से पत्रकारिता का प्रशिक्षण प्राप्त करके लौटकर 1965 में अपने पिताजी से ''दैनिक जागरण'' समाचार पत्र के सपांदन का उत्तरदायित्व सम्भाला। यह सम्पादन का वह काल था जब अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी रहन-सहन को लोग उच्चता और प्रमुखता देते थे। इस कारण से अंग्रेजी समाचार पत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस दौर में हिन्दी भाषा में प्रकाशित दैनिक जागरण की उन्नति और उसका विकास एक चुनौति थी। नरेन्द्र मोहन धरती से जुड़े हुए युवक थे। उनका मानना था कि किसी समाचार-पत्र की मुख्य भूमिका जन-सामान्य की आवाज को बुलंद करना है। उनकी समस्याओं, उनके प्रतिदिन के संघर्ष का ब्यौरा प्रशासन और शासन तक पहुँचना उसका पहला कर्त्तव्य है। इसके लिए जनसामान्य की भाषा हिन्दी ही समर्थ हो सकती है। इस उद्देश्यों को



प्राप्त करने के लिए नरेन्द्र मोहन ने समाचार पत्र की नीति और उसमें प्रकाशित स्तम्भों और सामग्रियों में परिवर्तन किये। स्वयं सम्पादकीय स्तम्भ के साथ ''विचार प्रवाह'' नया स्तम्भ लिखने लगे। इन नये प्रयोगों का प्रभाव यह हुआ कि यह पत्र साधारण जनता का मुख-पत्र बन गया। कानपुर नगर देश की राजधानी दिल्ली से सैकड़ों किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस समाचार पत्र का प्रभाव उस नगर और उत्तर प्रदेश की राजनीति पर होना चाहिए था। परन्तु उत्तर प्रदेश देश का वह प्रान्त है जिसके लोक-सभा में अन्य प्रान्तों की तुलना में सर्वाधिक सदस्य होते हैं। इससे केन्द्र में किस राजनैतिक पार्टी की सरकार हो, इसमें उन सदस्यों का संगठन मुख्य भूमिका निभाने की स्थिति में होता है। इस परिस्थिति में उस प्रदेश का समाचार-पत्र जन-सामान्य में कोई विचार-प्रवाह और उनका सम्पादक उचित निर्देश देने में समर्थ होता है। नरेन्द्र-मोहन ने जन-सामान्य की नब्ज जांच ली थी और उसी प्रकार के विचार और दिशा-निर्देश जागरण दैनिक में प्रकाशित होने लगे। इससे यह जन-प्रिय हो गया और इसकी प्रतियों की मांग लाखों में हो गई। समाचार पत्र की लोक प्रियता दूसरे शब्दों में सम्पादक की लोकप्रियता होती है। साथ ही राजनैतिक क्षेत्रों में नरेन्द्र मोहन का महत्त्व बढ़ता चला गया। केन्द्र सरकार में प्रधानमंत्री उनको अनदेखा नहीं कर सकते थे। उसमें दी गई आलोचना को गम्भीर रूप में लिया जाता था। यही कारण था कि नरेन्द्र मोहन जी को प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 1985 में अमेरिका, इजिप्ट, काहिरा, फ्रांस, अल्जीरिया, 1986 में जाम्बिया, जिम्बाम्बे, अंगोला व तन्जानिया, 1987 में मास्को, श्रीलंका, अमेरिका, कनाडा की अपनी सरकारी विदेश यात्राओं में अपने डेलिगेटों में शामिल किया। तत्पश्चात् विश्वप्रताप सिंह जब प्रधानमंत्री बने तब वे उनको 1990 में नामीबिया और रूस, अपने साथ लेकर गये। प्रधानमंत्री नरसिन्हन राव ने भी नरेन्द्र मोहन के महत्त्व को कम करके नहीं जांचा। वे नरेन्द्र मोहन को 1992 में अमेरिका व स्विटरलैंड, 1993 में चीन तथा कोरिया, 1994 में पुनः अमेरिका, 1995 में इंग्लैंड, अपनी सरकारी यात्राओं में साथ लेकर गये। इस प्रकार नरेन्द्र मोहन ने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का विस्तृत ज्ञान अर्जित किया। उन देशों की शासन प्रणाली, राज-व्यवस्था और अर्थव्यवस्था की उनको पूर्ण जानकारी थी। नरेन्द्र मोहन ने उपरोक्त राजकीय डेलीगेशनों के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी विदेश यात्राएं की।

नरेन्द्र मोहन ने पत्रकारिता में निपुणता और कुशलता से दैनिक जागरण को प्रगति प्रदान की, वहीं सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और शैक्षिक कार्यक्रमों में

सक्रिय भाग लिया। अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया। मोरिशिस में 'अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद्' में और जापान 'में बौद्ध सम्मेलन' में भाग लेने गये। सामाजिक कार्यों में विशिष्ट स्थान प्राप्त था। उनके परामर्श और दिशा-निर्देशों को गम्भीरता से लिया जाता था। 2001 के वर्ष 10 अप्रैल को आयोजित 'अखिल भारतीय वैश्य सम्मेलन में उनको मुख्य अतिथि बनाया गया। नरेन्द्र मोहन जी ने इस प्रकार के अनेक आयोजनों में भाग लिया। आयोजकों और संस्थाओं ने उनकी सेवाओं की अनदेखी नहीं की। उनको लगभग डेढ़ दर्जन पुरस्कार, स्मृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र और सम्मान दिये। उनमें 'यू.पी.रत्न', 'संस्कृत पुरस्कार' 'ज्ञान भारती' पुरस्कार 'वैश्यरत्न सम्मान' 'राष्ट्र गौरव' की उपाधि, 'मातृश्री' और सीता' सम्मान प्रमुख है। उनकी साहित्यिक कृतियों में ''अमृत की ओर'', 'खोलो द्वार', 'तुम्हारा संगीत', 'दासत्व से उबरो', 'सत्य की धूम' 'धर्म और साम्प्रदायिकता' 'प्रतिरक्षा और सामरिक नीति' 'आज की राजनीति' और 'भ्रष्टाचार' हैं।

नरेन्द्र मोहन उपरोक्त रुचियों के कारण अनेक संस्थाओं से जुड़कर रहे जिनमें रोटरी कल्ब, 'हिमालयन इण्टरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ योग, साइंस एण्ड फिलासफी, उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी, पी.टी.आई., हिन्दी भवन, बैंक ऑफ राजस्थान कुछ के नाम दिये जा सकते हैं। भाजपा से राज्य सभा के सदस्य बनाये गये। इससे उनको कई समितियों में नामित किया गया। आपत्-काल में सरकार के विरूद्ध लिखने के कारण उनको गिरफ्तार किया गया था। ऐसे निर्भीक, स्पष्टवादी, उच्च विचार, योग्य महापुरूष का देहान्त 28 सितम्बर, 2002 को हुआ। अब दैनिक जागरण का पद-भार उनके भाई योगेन्द्र मोहन गुप्ता सम्भाले हुए हैं।



# (31) डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री

**भारत सरकार ने डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री के सम्मान में 27 मई 2004 को 5 रूपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

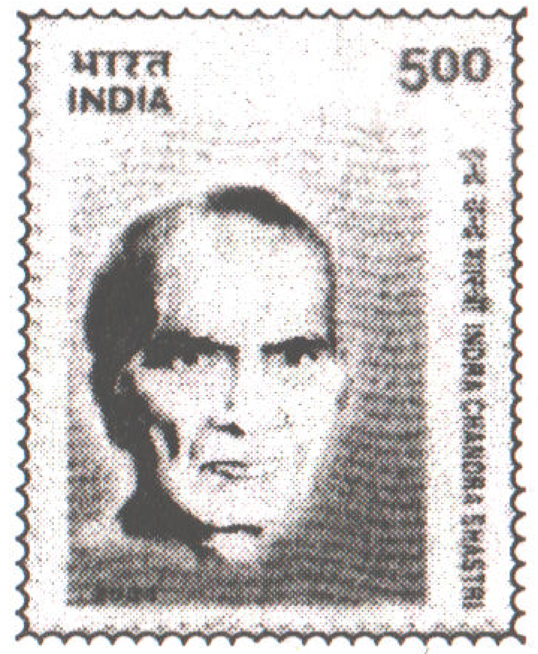


डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री का जन्म 27 मई 1912 को हरियाणा प्रान्त के सिरसा जिले के डबवाली मंडी के अग्रवाल (सिंहल) परिवार में हुआ। उनके पिता जी का नाम श्री बीरबलदास और माता जी का श्रीमती रतिदेवी था। डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री शिक्षा ग्रहण करने के लिए बीकानेर चले आए जहां उन्होंने संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन किया। बाद में उन्होंनें आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में स्नातकोत्तर और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदांत में 'शास्त्राचार्य' की। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से 'शास्त्री' और कलकत्ता से 'न्यायतीर्थ की उपाधि प्राप्त की। पंडित बाल कृष्ण मिश्र के मार्ग दर्शन में उन्होंने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। ''एपिस्टेमॉलाजी ऑफ जैन आगम्स'' पर उनके शोध निबंध की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

शास्त्रीजी महात्मा गांधी से काफी प्रभावित थे और उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। 1942 में उन्होंने बाल दिक्षा के खिलाफ अभियान चलाया। उस समय प्रचलित इस प्रथा के अंतर्गत जैन साधु राजस्थान में गरीब बच्चों को बलात् गोद ले लेते थे। इस अभियान के फलस्वरूप बीकानेर विधान सभा में एक विधेयक प्रस्तुत हुआ। विभाजन के दौरान उन्होंने सहायता शिविर भी लगाए। वे संगठनात्मक गतिविधियों में भी शामिल थे। 1954-58 तक वे अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन के सचिव रहे। 1957 में उन्होंने ऑल इंडिया आरियंटल कॉन्फ्रेंस के दिल्ली सत्र का भी आयोजन किया। उज्जैन, राजगीर और दिल्ली के विश्व धर्म सम्मेलन में वे मुख्य वक्ता रहे। 1959 में वे दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर अध्ययन संस्थान में संस्कृत के पहले विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। ग्लूकोमा के चलते दृष्टि चले जाने के कारण 1961 में उन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया। तत्पश्चात् विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक योजना के अंतर्गत वे प्राफेसर एमेरिटस नियुक्त हुए और 1967-69 के दौरान उन्होंने 'धर्म और आधुनिक मनुष्य' पर शोध किया। आमंत्रित वक्ता के रूप में वे अनेक विभागों से संबद्ध रहे।

उनके लेखन पर विद्वता की गहरी छाप है। उन्होंने लगभग 70 पुस्तकें और 600 शोध पत्र लिखें, जिनमें उन्होंने ग्रंथो के ज्ञान का सार निकालकर उसे आधुनिक परिवेश में लागू किया। उनकी 'पालि भाषा और साहित्य' में तीन प्रस्तावनाओं की श्रृंखला है, जिसके बाद विलहेम गाइगर लिखित प्रसिद्ध जर्मन कृति 'पालि लिट्राटर अंद स्प्राशे' की भूमिका का हिन्दी अनुवाद है। डॉ. शास्त्री ने शताब्दियों से प्रचलित चिंतन धाराओं का तटस्थ आलोचनात्मक विश्लेषण किया। मृतप्राय मान्यताओं को तोड़ने के लिए तर्क को आवश्यक साधन मानते हुए भी उन्होंने मौलिक चिंतन संरचना की विरासत को अपनाया। उनमें एक अन्वेष्क और सुधारक का अविरल उत्साह था। इसके प्रमाण उनकी कृतियों में संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, महाभारत के सूक्ति रत्न, आलोक और उन्माद, हमारी परंपरा, जैनिज्म एंड डेमोक्रेसी, धर्म और राष्ट्र निर्माण, भारतीय आर्य भाषाएं आदि शामिल हैं।

उनके अग्रगामी प्रयासों और सृजनात्मक प्रतिभा के सम्मान में हिन्दी अकादमी ने उन्हें 'साहित्य सेवा सम्मान' प्रदान किया। दिल्ली विश्वविद्यालय के उप-कुलपति द्वारा उन्हें 'साहित्य रत्न अलंकरण' सम्मान भी प्रदान किया। भारत के राष्ट्रपति ने 15 अगस्त 1986 को उन्हें 'सम्मान प्रशस्ति-पत्र' प्रदान किया। जिस क्षेत्र में डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री का निवास स्थान था वहाँ उनके नाम को चिरस्थायी बनाने के लिए शक्तिनगर के नागिया पार्क से विश्वविद्यालय तक की सड़क का नाम 'इन्द्रचन्द्र शास्त्री मार्ग' रखा है।

डॉ. सतकरी मुखर्जी के अनुसार 'एपिस्टेमॉलॉजी ऑफ जैन अगम्स' जो एक तुलनात्मक अध्ययन है, में ''रूढ़िवादिता और वास्तविकता, इन दोनों की सहमति और असहमति के मुद्दों का जिस परिपक्वता से आंकलन किया गया है, वह निश्चित ही लेखक को अंग्रेजी भाषा में जैन धर्म अध्ययन के अग्रणी व्याख्याकार की ख्याति प्रदान करेगा।इस अध्ययन में एक स्वस्थ दृष्टिकोण और हठधर्मिता से मुक्ति की झलक मिलती है।'' दृष्टि चले जाने के बावजूद उनके विपुल उद्‌गारो का प्रवाह नही थमा और वे श्रुतलेख के माध्यम से अपने भावों और विचारों को महान कृतियों का रूप देने लगे।

साहस और समर्पण की इस प्रतिमूर्ति का 3 नवंबर 1986 को निधन हो गया। डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री मनुष्य के व्यक्तिगत से वैश्विक और मानवतावादी होने तक की आध्यात्मिक यात्रा के हिमायती थे। उनके जीवन के सफर का तीर्थटन था, जिसे हम सभी सादर स्मरण और हृदय में ग्रहण करते हैं।



# (32) ज्योति प्रसाद अगरवाला

**भारत सरकार ने ज्योति प्रसाद अगरवाला के सम्मान में 17-6-2004 को 5 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

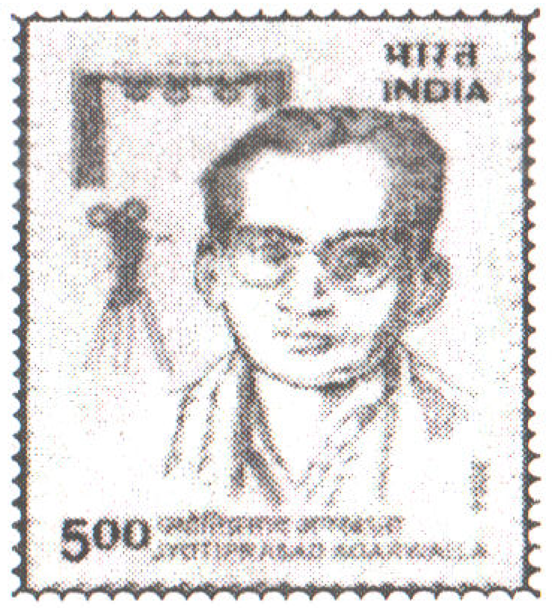

ज्योति प्रसाद अगरवाला का जन्म 17 जून, 1903 को परमानन्द अगरवाला और किरणमयी देवी के घर हुआ। उन्होंने डिब्रूगढ़ के तेजपुर हाई स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। 1921 में गांधी जी के तेजपुर आगमन पर श्री अगरवाला उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। बाद में उन्होंने चित्तरंजन दास विश्वविद्यालय और नेशनल कॉलेज कलकत्ता से अपनी शिक्षा पूरी की। उनके युवा हृदय में देशभक्ति के प्रति प्रज्ज्वलित लौ राष्ट्रवाद की आजीवन ज्वाला में परिवर्तित हो गई। 1930 के दशक में ज्योति प्रसाद अगरवाला एक सक्रिय सत्याग्रही बन गए और तेजपुर के ग्रामीण क्षेत्रों का व्यापक दौरा किया। उन्होंने राष्ट्रभक्ति के अनेक गीत लिखे जिन्होंने नौजवानों को प्रेरित किया। ब्रिटिश शासन ने 1932 में उन्हें उनकी गतिविधियों से भयभीत होकर गिरफ्तार कर लिया और उन पर 500/-रु. का जुर्माना ठोक दिया गया। इस उथल-पुथल के दौर में उन्होंने डिब्रूगढ़ निवासी देवजानी भूयान से विवाह किया। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान स्वयंसेवक बल के कमांडर के रूप में ज्योति प्रसाद भूमिगत होकर क्रांति का संदेश फैलाते रहे। वे हमेशा शांति के उपासक रहे और गांधीजी के परामर्श पर 15 अगस्त, 1943 को दारांग जिला न्यायालय में उन्होंने स्वयं को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। उन पर मुकदमा चला, परन्तु सबूतों के आभाव में उन्हें रिहा कर दिया गया।

ज्योति प्रसाद अगरवाला ने 14 वर्ष की आयु में ही ''शोणित कुंवारी'' की रचन की थी। यह अभिनव प्रयोगों से युक्त एक संगीतात्मक नृत्य-नाटिका थी। इसमें निहित पद्‌मकलि नृत्य 'बीहू' और 'भावना' का संयुक्त रूप है। 1924 में बने रंगशाला में इस नृत्य-नाटिका का पहली बार मंचन किया गया और यह असमिया नाटक के इतिहास में मील का पत्थर बन गया। उनकी अन्य रचनाएं थीं-कारिंगारलीगिरि, रुपालिम, लाभिता और निमति कन्या।

वे एक मंजे हुए कवि थे और उनकी अलंकृत भाषा विशुद्ध और मृदुल असमिया शब्दों से सुसज्जित थी। उन्होंने 'ज्योति रामायण' की भी रचना की,

जिसे बाल साहित्य के लिए उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

उन्होंने 'ज्योति संगीत' की भी शुरूआत की, जो असमिया, हिन्दुस्तानी और पाश्चात्य संगीत का सम्मिश्रण है।

ज्योति प्रसाद अगरवाला 1926 में विदेश गये और 1927 में एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए प्रवेश लिया। वे संगीत और नाट्य संसार की तत्कालीन प्रायोगिक प्रवृत्तियों और सिनेमा के उत्तरोत्तर विकास से प्रभावित हुए। 1929 में उन्होंने बर्लिन में सिनेमेटोग्राफी का अध्ययन किया।

भारत लौटने पर उन्होंने 'जॉयमति' नामक फिल्म बनाई। यह असम की पहली फिल्म थी और मूक फिल्मों के दौर में एक बोलती फिल्म भी। यह फिल्म 10 मार्च, 1935 को रिलीज हुई और इसने असम के सिनेमा इतिहास में नया अध्याय जोड़ा। सिनेमाई तकनीक के स्तर पर यह फिल्म अपने समय से काफी आगे की फिल्म थी जो यथार्थवादी और सूक्ष्म अदाकारी से सजी थी। उनकी अगली फिल्म 'इन्द्रमालती' थी। उन्होंने प्रथम फिल्म स्टूडियो 'चित्रबन', प्रथम थियेटर 'जोनाकी' और 'तेजपु संगीत महाविद्यालय' की भी स्थापना की। उन्होंने प्रख्यात साहित्यकार श्री विष्णु प्रसाद राभा के साथ अपने नाटकों का पहला ग्रामोफोन रिकॉर्ड भी तैयार किया।

ज्योतिप्रसाद अगरवाला ने अपना संपूर्ण जीवन असमिया समाज को नवजीवन प्रदान करने के प्रति समर्पित किया। असम के जातीय समुदायों की एकता की धारा उन्हीं के साहित्यिक सरोवर से फूटती है। उनका मानना था कि जनसाधारण की सशक्तता से ही सांस्कृतिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। उन्होंने असमिया को असम की राजभाषा बनाने के लिए संघर्ष किया। गुवाहाटी विश्वविद्यालय उनके निःस्वार्थ और अथक प्रयासों का ही एक उदाहरण है।

असमिया साहित्य, संगीत और संस्कृति के प्रति उनके योगदान के लिए उन्हें सस्नेह 'रूपकुंवर' अर्थात् सौंदर्य का राजकुमार भी कहा जाता है।

ज्योतिप्रसाद अगरवाला का 17 जनवरी, 1951 को निधन हो गया। इस दिन को असम में 'शिल्पी दिवस' के रूप में मनाया जाता हैं



# (33) आचार्य भिक्षु

**भारत सरकार ने आचार्य भिक्षु के सम्मान में 30 जून 2004 को 5 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

आचार्य भिक्षु का जन्म विक्रम सवंत् 1783 (सन् 1726) आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को राजस्थान के पाली जिले में कंटालिया ग्राम में शाह बल्लूजी सकलेचा और दीपांजी के घर हुआ। उनका विवाह पड़ोस के गांव की सुगणीबाई से हुआ था, लेकिन अपने पिता और पत्नी के अल्पावधि में ही आकस्मिक देहांत हो जाने के कारण उन्होंने आर्चाय रघुनाथ जी के मार्गदर्शन में संन्यास ग्रहण कर लिया। वे पारंपरिक रुढ़िवादियों, मिथ्या धारणाओं और अंधविश्वास के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए बगड़ी गांव से प्रस्थान कर गए और राजस्थान के मेवाड़ के केलबा जा पहुंचे। वहाँ उन्होंने व्रत धारण किया और 28 जून, 1760 (ईस्वी) को तेरापंथ धार्मिक संघ की स्थापना की।

वे जैन धर्म की श्वेतांबर तेरापंथ सम्प्रदाय के संस्थापक एवं क्रांतिकारी विचारधारा के महापुरुष थे। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों के गूढ़ अध्ययन के उपरांत जब यह समझ लिया कि लोग इनकी गलत व्याख्या करते हैं तथा समाज में इनके विकृत रूप ही प्रचलित हैं तब वे इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने को प्रेरित हुए।

आर्चाय भिक्षु एक दार्शनिक संत, अनुभूतिक्षम लेखक, संवेदनशील कवि और समाज सुधारक थे। उन्होंने लगभग 38000 (अड़तीस हजार) श्लोकों की रचना की और उनकी रचनाएं "भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर" नाम से दो भागों में संग्रहीत हैं। उनकी रचनाओं में "नव पदार्थ सद्भाव" को एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ माना जाता है जिसमें जैन दर्शन के नव रत्नों का समग्र प्रतिपादन है। यह एक शोषण मुक्त समाज का समर्थन करता है।

आचार्य भिक्षु धार्मिक क्रांति के अग्रदूत थे। उन्होंने समाज को अनेक बुराइयों से मुक्त करने के लिए बहुत अधिक परिश्रम किया। आचार्य भिक्षु के विचारों से लोग राजनीति, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में लाभप्रद मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने ध्येय की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता होने की भरपूर हिमायत की। उन्होंने कहा कि दण्ड के भय और पुरस्कार के प्रलोभन से धर्म कार्य को निष्पादित नहीं किया जा सकता। इसके लिए हृदय परिवर्तन अनिवार्य है। उनका विश्वास था कि आवश्यकतावश की

गई हिंसा भी हिंसा ही है। बड़ों के लाभ के लिए छोटों का दमन करना स्वीकार्य नहीं था। उन्होंने संसार को धर्म और समाज की विभिन्न भूमिकाओं का ज्ञान दिया। उन्होंने कहा कि जहाँ कहीं भी भलाई और सच्चाई है यह जाति, पंथ अथवा स्थान के भेद-भाव को ध्यान में न रखते हुए समाज कल्याण के लिए हितकर होगा। पीड़ित, शोषित और असहाय लोगों को दी गई सहायता को उन्होंने कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व और सामाजिक बाध्यता से जोड़कर समाज में क्रांति का आह्वान किया।

आचार्य भिक्षु ने विक्रम संवत् 1860 (सन् 1803) में राजस्थान के सिरियारी में निर्वाण प्राप्त किया। तथापि, संघ के 10वें आचार्य, आचार्य महाप्रज्ञ ने उनके सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया जिनकी "जीवन विज्ञान" नामक रचना में ध्यान प्रणाली पर महत्त्वपूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है। वे 'प्रेक्षा ध्यान' को पुनरुज्जीवित करने के लिए गहन ध्यान में मग्न हो गए जो तनाव, व्यसन जैसी अनेक समस्याओं तथा अन्य भावात्मक, मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है। वर्तमान तेरापंथ दर्शन मानवतावादी, धर्मनिपेक्ष एवं शांति पर आधारित आर्चाय भिक्षु के आदर्शों को प्रोत्साहित एवं प्रसारित करता है।



# (34) वालचंद हिराचंद

**भारत सरकार ने वालचंद के सम्मान में 23 नवम्बर 2004 को 5 रुपये मूल्य की 7 लाख डाक टिकटे जारी की।**

वालचंद का जन्म 23 नवम्बर 1882 को महाराष्ट्र प्रान्त के शोलापुर नगर में हुआ। उनके पिता जी का नाम हिराचंद और माता जी का नाम राजूबाई था जिनका वालचंद के जन्म होने के पन्द्रह दिन में ही देहान्त हो गया। इस दुख की घड़ी में उनकी चाची उमाबाई ने उनका पालन पोषण किया और उन्हें मां की कमी का अहसास नहीं होने दिया। उनके पिता हिराचंद ने यह सुनिश्चित किया कि वालचंद की दिनचर्या अनुशासन, सत्यनिष्ठा और नित्यता से युक्त हो। यद्यपि भगवान महावीर के अधिकांश उपदेश अर्धमागधी में थे फिर भी यह सुनिश्चित करने के लिए कि भगवान के संस्कृत में लिखे उपदेशों से बालक वंचित न रह जाए, हिराचंद ने अपने पुत्र से कुछ चुनिंदा खण्डों को कंठस्थ कराया जिनकी व्याख्या उन्होंने स्वयं अथवा किसी विद्वान से कराई थी। वालचंद ने अपनी शिक्षा राजकीय हाईस्कूल, शोलापुर, सेंट जेवियर कॉलेज, धोबी तालाब (मुम्बई) और दक्कन कॉलेज, पुणे में प्राप्त की।

20 वीं शताब्दी के प्रांम्भिक काल पर दादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्ति एम.जी. रानाडे, जी.वी.जोशी और आर.सी.दत्त जैसे मूर्धन्य राजनैतिक व्यक्तियों के अथक प्रयासों की छाप है। उन्होंने भारत की गरीबी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया और उपनिवेशी शासकों की इकतरफा नीति का पर्दाफाश किया जिसके द्वारा भारतीयों को ऐसे आधुनिक यांत्रिकी ज्ञान से वंचित रखना था जिसकी मदद से भारत, ब्रिटिश माल का बाजार बनने के स्थान पर, स्वयं कच्चे माल को तैयार माल में बदलकर, विश्व बाजार बनने के स्थान पर स्वयं कच्चे माल को तैयार माल में बदलकर विश्व बाजार में उत्तर सकता था। इन देशभक्तों के प्रयासों ने वालचंद पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने अपने देश से गरीबी और आर्थिक गुलामी को मिटाने के प्रति अपने जीवन को समर्पित करने का संकल्प लिया। उसी दिन से उनके विचारों और कर्मों का एक मात्र लक्ष्य अपने देश का औद्योगिकरण करना बन गया।

शोलापुर में ज्वार और इसके बाद कपास के व्यापार में असफल होने पर वालचंद ने अपने निजी अनुभवों से यह सीख ली कि ठेके पर व्यापार करना ही

लाभप्रद होगा। अपने पिता और चाचा के विरोध के बावजूद, उन्होंने एक भूतपूर्व रेलवे लिपिक लक्ष्मण बलवंत पाठक (1874–1935) के साथ साझेदारी की और बारसी लाइट रेलवे नामक रेलवे लाइन के निर्माण का ठेका प्राप्त किया जो सफल रहा। उसके बाद वालचंद आगे बढ़ते गए और उन्होंने अनेक उद्योगो की स्थापना की तथा देश के आधारभूत परिवहन साधनों की नींव रखी।

उनका अगला लक्ष्य लोगों को जोड़ने के लिए पुलों का निर्माण करना था। वालचंद ने महाराष्ट्र में भोरघाट सुरंग को सफलतापूर्वक पूरा किया जिसे उस समय किसी भारतीय कंपनी की क्षमताओं से परे का काम समझा जाता था। कुछेक वर्षों में, हिन्दुस्तान कनस्ट्रक्शन कंपनी (एचसीसी) बनी जिसने कुछ विशेष निर्माण परियोजनाओं को अंजाम दिया। अपनी विदेश यात्राओं के दौरान एक बार वालचंद एक अमरिकी हवाई जहाज कंपनी के अध्यक्ष से मिले, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने भारत में हवाई जहाज निर्मित करने का निश्चय किया। उन्होंने निर्धारित समय से पूर्व ही हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लिमिटेड (एचएएल) की स्थापना का कार्य पूरा किया और एचएएल द्वारा निर्मित प्रथम प्रशिक्षण हवाई जहाज 'हार्लो' ने जुलाई 1941 में उड़ान भरी। तदनंतर, भारत सरकार ने एचएएल का अधिग्रहण कर लिया और उसके बाद से एचएएल हवाई जहाजों का निर्माण तथा भारतीय वायुसीमा की सुरक्षा करता आ रहा है। वालचंद ने जल और सड़क परिवहन में भी अपनी पहचान बनाई। उनकी सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कंपनी के पास 54 स्टीमरों का बेड़ा था जो उस समय की सबसे बड़ी जल परिवहन कंपनी थी। इसी प्रकार प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स लि. ने 1947 में पहली बार स्वदेश निर्मित कारों और ट्रकों को चलाया।

वालचंद ने महसूस किया कि जब तक खेती को आधुनिकीकृत तथा लाभकारी नहीं बनाया जाता, तब तक भारत के लाखों गरीबों की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकेगा। उन्होंने गन्ने पर अपना ध्यान केंद्रित किया और रावलगांव शुगर फार्म लिमिटेड की स्थापना की। बेहतर चीनी प्रोसेसिंग प्रौद्योगिकी के द्वारा उन्होंने ऐसी चीनी का उत्पादन किया जो अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप थी। व्यापार में उतार–चढ़ाव आने के बावजूद, वालचंद ने अपने कर्मचारियों और समुदाय के हित और कल्याण का मुख्य रूप से ध्यान रखा। उन्होंने अनेक शैक्षणिक और व्यापारिक संस्थानों की स्थापना की जैसे महाराष्ट्र के सांगली में वालचंद कॉलेज ऑफ इंजीनीयनिंग, द इंडिया मर्चेंट चैंबर्स, महाराष्ट्र चैंबर ऑफ कॉमर्स, फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज आदि। भारतीय उद्योग और इसके बुनियादी ढांचे पर अपनी अमिट छाप छोड़कर 8 अप्रैल, 1953 को श्री वालचंद हिरांचद परलोक सिधार गए। उनके जीवन का ध्येय भारत को आर्थिक बंधनों से मुक्त करना और यह सिद्ध करना था कि अवसर दिए जाएं तो भारत में वह क्षमता और योग्यता है कि वह कभी किसी से पीछे नहीं रहेगा।



# (35) पद्मपत सिंहानिया

**भारत सरकार ने पद्मपत सिहांनिया के सम्मान में 3 फरवरी 2005 को 5 रुपये मूल्य की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।**

राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत पद्मपत सिंहानिया भारत के अग्रगामी उद्योगपतियों में से एक थे। उनका विश्वास था कि सच्ची आजादी का रास्ता औद्योगिक स्वतंत्रता से ही निकलता है। वे जे.के संगठन के प्रमुख और स्वभाव से परोपकारी थे।

3 फरवरी 1905 को सेठ कमलापत सिंहानिया और श्रीमती रामप्यारी के घर जन्मे पद्मपत सिंहानिया ने संविधान सभा के सदस्य और संविधान के हस्ताक्षरकर्ता के रूप में भारत के सांविधानिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पद्मपत सिंहानिया ने किसी भी स्कूल में कोई औपचारिक शैक्षणिक योग्यता हासिल नहीं की। जिंदगी के सबक उन्होंने शैक्षणिक संस्थानों के बाहर ही सीखे।

किशोरावस्था में ही पद्मपत सिंहानिया ने अदभुत् परिपक्वता और व्यवसाय की गहरी समझ का प्रदर्शन किया। वे जब केवल 16 वर्ष के थे, तब उन्होंने नवस्थापित जे.के. कॉटन स्पिनिंग एंड वीविंग मिल्स में स्वदेशी आंदोलन की सच्ची भावना के अनुरूप प्रमुख जिम्मेदारी संभालनी शुरू की। उन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बाद कारोबार को अत्यंत कुशलता से चलाया। पद्मपत सिंहानिया दृढ़ राष्ट्रवादी भावनाओं वाले व्यक्ति थे। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के चरम सीमा पर होने के दौरान महामना मदन मोहन मालवीय और श्री बालकृष्ण शर्मा सरीखे प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों ने फंड के लिए उनसे संपर्क किया। वे एक गुप्त कार्रवाई को अंजाम देने में भी शामिल थे।

ब्रिटिश हुकूमत ने यद्यापि 1943 में उन्हें नाइट की उपाधि प्रदान की, पर उन्होंने खुले दिल से वित्तीय मदद देकर स्वदेशी आंदोलन और स्वतंत्रता संग्राम को समर्थन जारी रखा।

अपने विशाल औद्योगिक साम्राज्य के माध्यम से पद्मपत सिंहानिया ने स्वातंत्र्योत्तर युग में भारतीय औद्योगिक परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। आज देश और विदेश में 70 इकाइयां है, जिनमें पारंपरिक उत्पादों से लेकर सूती वस्त्र, जूट के वस्त्र, ऊनी वस्त्र, रेयॉन, नायलॉन, लौह व स्टील, सीमेंट, शिपिंग,

वायु परिवहन आदि उद्योग शामिल हैं। उनको कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा 1969 में ''डी लिट'' की (मानद उपाधि) प्रदान की गई।

उनकी सादगी और मानवता की सेवा के प्रति समर्पण भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। उनका पूरा जीवन अपने देशवासियों की सेवा में समर्पित रहा। पद्मपत सिंहानिया ने विभिन्न सार्वजनिक निकायों के संवर्द्धन और उत्थान में सक्रिय भूमिका निभाई। वे मर्चेंट्स चेंबर आफ उत्तर प्रदेश, कानपुर के संस्थापक भी थे। वे विधान सभा और संविधान सभा के सदस्य भी रहे। वे सामाजिक और धार्मिक सुधारों में विश्वास रखते थे और गीता के सिद्धांतों के पक्के अनुयायी थे। उन्होंने जनहित में अनेक शैक्षणिक, चिकित्सा और धार्मिक संस्थाएं बनाई। उनका 18 नंवबर 1979 को देहावसान हो गया।



# (36) ए.एम.एम. मुरूगप्पा चेट्टियार

**भारत सरकार ने ए.एम.एम. मुरूगप्पा चेट्टियार के सम्मानमें 1 अक्टूबर 2005 को 5 रुपये मूल्य की 6 लाख डाक टिकटें जारी की।**

श्री ए.एम.एम. मुरूगप्पा चेट्टियार भारत के अग्रणी उद्यमी और लोकहितैषी थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र के आर्थिक और औद्योगिक ढांचे के निमार्ण में उनकी अविस्मरणीय भूमिका रही।

दीवान बहादुर ए.एम.एम. मुरूगप्पा चिट्टियार के सुपुत्र, श्री ए.एम.एम मुरुगप्पा चेट्टियार का जन्म 22 जनवरी, 1902 में तमिलनाडु के रामनाड जिले में पल्लतुर में हुआ। अल्पावस्था से ही श्री ए.एम.एम. मुरूगप्पा चेट्टियार में अनोखी परिपक्वता और व्यवसायिक सूझ-बूझ थी। उन्होंने उन दिनों भारत में हल्के मध्यम इंजीनियरिंग उद्योंगों को प्रोन्नत करने के महत्त्व को पहचाना और इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही विख्यात ब्रिटिश ग्रुप, मै. ट्यूब इन्वेस्टमेंट्स लि. बरमिंघम इंगलैण्ड के सहयोग से जानी मानी ट्यूब इन्वेस्टमेंट्स इंडिया लि., की स्थापना की। उनके टी.आई. मैटल सेक्शन, राइट सैडल्स ऑफ इंडिया, टी.आई. डॉयमन्ड चेन लिमिटेड और टी.आई. मिलर लिमिटेड ने दुनिया के प्रसिद्ध ब्राडों जैसे हरक्युलिस, फिलिप्स और बी.एस.ए. साइकिल्स, बाइसिकल पुर्जो, इलैक्ट्रिक रेजिस्टेंस, वेल्डिड टयूब्स, बाइसिकल और इंडस्ट्रियल चेन, डॉयनमो लैम्प आदि के उत्पादन में उल्लेखनीय योगदान दिया। श्री ए.एम.एम. मुरूगप्पा चेट्टियार द्वारा विकसित एक अन्य सुनियोजित उद्योग ब्रिटेन की कारबोरेंडम कम्पनी लिमिटेड के सहयोग से चेन्नई में मैं. कारबोरंडम यूनिवर्सल लिमिटेड स्थापित की। जहां घिसने वाले और पीसने वाले पत्थरों का उत्पादन होता हैं उन्होंने कोरोमंडल इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड जैसे कई अन्य औद्योगिक उद्यमों की शुरूआत करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये उद्योग संयुक्त रूप से घिसाई, भवन-निर्माण सामग्री, इंजीनियरिंग, फार्म इनपुट, खाद्य संस्करण, वित्तीय सेवाएं, विपणन सेवाएं, पौधारोपण, चीनी, जैव-उत्पादन और रसायनों आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यवसायिक गतिविधियां चला रहे हैं और इन उद्योगों ने प्रत्यक्ष रूप से 28,000 से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान किया है।

श्री ए.एम.एम. मुरूगप्पा चेट्टियार को कई औद्योगिक, वाणिज्यिक और

शैक्षणिक संस्थाओं के निदेशक के पद से सम्मानित किया गया। वे अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद, मद्रास विश्वविद्यालय के सीनेट के सदस्य और सदर्न इंडिया चैंबर ऑफ कॉमर्स के अध्यक्ष रहे। वे पहले भारतीय थे जिनको फेडरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री का अध्यक्ष चुना गया।

उनमें अपने देशवासियों विशेषत: गरीबों और जरूरतमंदों के प्रति सेवा की गहन भावना भरी थी। इसके प्रयोजनार्थ उन्होंने ए.एम.एम. धर्मार्थ ट्रस्ट (अब ए. एम.एम. फाउन्डेशन) की स्थापना की। यह ट्रस्ट ए.एम.ए. अस्पताल, मुरूगप्पा चेट्टियार मेमोरियल पॉलीटेक्निक, सर रामास्वामी मुदलियार हायर सेकेंडरी स्कूल, वेल्लयन चेट्टियार हायर सेकेंडरी स्कूल, सर इवान स्टेडफोर्ड अस्पताल आदि विभिन्न संस्थाओं की स्थापना एवं प्रचालन का दायित्व संभाले हुए है।

भारतीय उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ने के उपरांत श्री ए.एम.एम. मुरुगप्पा चेट्टियार का 1965 में निधन हो गया।



# (37) जवाहरलाल दर्डा

**भारत सरकार ने जवाहरलाल दर्डा के सम्मान में 2 दिसम्बर 2005 को 5 रुपये मुल्य की 6 लाख टिकटें जारी की।**

श्री जवाहरलाल दर्डा का जन्म 2 जुलाई 1923 को महाराष्ट्र में यवतमाल जिले के बभलगांव ग्राम में हुआ। उनके पिताजी का नाम अमीलचन्द और माता जी का नाम श्रीमती कुसुमबा था। 17 वर्ष की अल्पायु में ही वे स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हो गए। उन्होंने 400 मील लंबी पदयात्रा भी की तथा 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया जिसके चलते उन्हें बंदी बनाया गया। श्री जवाहलाल दर्डा एक वरिष्ठ स्वतन्त्रता सेनानी और एक समर्पित पत्रकार थे जिन्होंने महाराष्ट्र में लोकोन्मुखी पत्रकारिता की नींव रखी। उन्होंने 1947 में यवतमाल से राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए 'नवे जग' नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र शुरू किया। इसके बाद 1952 में उन्होंने मराठी साप्ताहिक 'लोकमत' की शुरूआत की, जिसे 1971 में दैनिक कर दिया गया। आज यह अखबार महाराष्ट्र के 13 शहरों से निकलता है और अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषाओं में भी प्रकाशित होता है।

श्री जवाहरलाल दर्डा को 1944 से 1956 तक यवतमाल जिला कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष चुना गया। विनोंबा भावे के भूदान आंदोलन के दौरान यवतमाल जिले में काफी भूमि दान की गई। 1972 से 1995 तक वे महाराष्ट्र विधान परिषद के लिए चुने जाते रहे। ऊर्जा, उद्योग, सिंचाई, स्वास्थ्य, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, खेल-कूद, युवा मामले, कपड़ा और पर्यावरण मंत्री रहते हुए उन्होंने महाराष्ट्र में कुशल प्रशासन के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये।

श्री जवाहरलाल दर्डा ने राज्य में सहकारी और कृषि से जुड़े आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। उन्होंने अमोलचंद दर्डा महाविद्यालय की स्थापना की, जो विदर्भ क्षेत्र में अनेक कॉलेजों और अन्य शिक्षा संस्थानों का संचालन करता हैं वे महाराष्ट्र राज्य गृह वित्त निगम के अध्यक्ष भी रहे।

'बाबू जी' के नाम से विख्यात श्री जवाहरलाल दर्डा ने गरीबों और दलितों के उत्थान के लिए कारगर कदम उठाए। ऊर्जा क्षेत्र में विकास को गति प्रदान करने के लिए उन्होंने नागपुर के नजदीक कोराड़ी ताप बिजलीघर की स्थापना की। उनकी गहरी दिलचस्पी के परिणामस्वरूप ही उनके समय में एक नई औद्योगिक नीति अस्तित्व में आई। उन्हीं के प्रयासों से महाराष्ट्र को भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान मिला और वे 'विकास पुरूष' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

25 नवम्बर, 1997 को उन्होंने मुंबई में अंतिम सांस ली। रचनात्मक सामाजिक सेवा के उनके आदर्श आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बने रहेंगे।

# (38) लाला दीनदयाल

**भारत सरकार ने लाला दीनदयाल के सम्मान में 11-11-2006 को 5 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

लाला दीनदयाल का जन्म 1844 में मेरठ के नजदीक सरधना में हुआ था। रुड़की के थॉमसन्स सिविल इंजीनियरिंग कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करने के बाद 1866 में वे इंदौर में निर्माण विभाग के सचिवालय में एस्टीमेटर तथा ड्राफ्ट्समैन बन गए। इसके बाद उनकी फोटोग्राफी के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। मध्य भारत के गवर्नर जनरल के एजेंट सर हेनरी डैली ने उन्हें काफी प्रोत्साहित किया और 1875 में उन्होंने लाला दीन दयाल को वेल्स के राजकुमार की शाही यात्रा के दौरान फोटो लेने का कार्य सौंपा। उनकी फोटो कला से प्रभावित हुए सर हेनरी उन्हें अपने साथ बुंदलेखण्ड की यात्रा पर ले गए। 1882-83 में दीन दयाल ने तत्कालीन एजेंट सर लेपेन ग्रिफिन के साथ बुंदेलखण्ड का पुनः दौरा किया। ग्वालियर, खजुराहो, रीवा और सांची के महलों, किलों और मंदिरों की उनकी 89 तस्वीरों को, ऑटोटाइप कार्बन प्रणाली से बेहतरीन ढंग से पुनः विकसित कर सर लेपेन ग्रिफिन की 'फेमस मॉन्यूमेन्ट्स ऑफ सेंट्रल इंडिया' हेतु तैयार किया गया। लाला दीन दयाल को वाइसरॉय लॉर्ड डफरिन और लेडी डफरिन की तस्वीरें लेने का अवसर मिला और उन्हें महामहिम वाइसरॉय के फोटोग्राफर के पद पर नियुक्त किया गया। उन्होंने जल्दी ही सरकारी सेवा से इस्तीफा दे दिया और पूर्णकालिक फोटोग्राफर हो गए। उनकी ख्याति दिनों-दिन बढ़ने लगी और जल्दी ही हैदराबाद के निजाम मीर महबूब अली खान ने उन्हें न केवल शाही फोटोग्राफर नियुक्त किया बल्कि 'राजा मुसव्विर जंग' की उपाधि से भी विभूषित किया। 1897 में लाला दीनदयाल को रॉयल वारंट (शाही फरमान) प्रदान कर उन्हें साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया का फोटोग्राफर नियुक्त किया गया।

उन्होंने इंदौर, सिकंदराबाद और मुंबई में स्टूडियो बनाए। 1893 में भारत दर्शन की उनकी प्रदर्शनी को शिकागो में वर्ल्ड कोलंबियन एक्सपोजिशन में विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्हें जयपुर, कोलकाता, लंदन और पूना में हुई विभिन्न फोटो प्रदर्शिनियों में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए। उन्होंने भारत के



कोने-कोने की यात्रा की और सभी महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थलों में घूमे और 6000 से अधिक तस्वीरों की श्रृंखला का संग्रहण किया, जो संभवतः उस समय के व्यवसायिक व गैर व्यवसायिक किसी भी एक फोटोग्राफर द्वारा जुटाया सबसे बड़ा संग्रह था। उनकी खींची अधिकतर तस्वीरें नई दिल्ली स्थिति इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में मौजूद हैं। 5 जुलाई, 1905 को 61 वर्ष की आयु में मुंबई में निधन हो गया, परन्तु देश की अगली पीढ़ियों के लिए कलात्मक चित्रों का विपुल कोष छोड़कर गये। उनकी सजीव तस्वीरें 19वीं सदी के भारत की मनोहर विपुलता, सौम्य वैभव और गरिमामय आर्कषण की दुर्लभ सचित्र झांकियां प्रस्तुत करती हैं। प्रतिष्ठित अभिजात्यवर्ग, हुक्काधारियों, शाही महलों, शाही शिकार, जुलूसों, हाथी सवारी आदि को अपनी तस्वीरों में उतारकर उन्होंने उस दौर के स्वर्णिम क्षणों को सदा के लिए संजो लिया था।

# (39) डॉ आर.एम. अलगप्प चेट्टियार

**भारत सरकार ने डॉ. आर.एम अलगप्प चेट्टियार के सम्मान मे 6 अप्रैल 2007 को 5 रुपये मूल्य की 4 लाख डाक टिकटें जारी कीं।**

डॉ. आर.एम. अलगप्प चेट्टियार का जन्म 6 अप्रैल, 1909 को शिवगंगा जिले के कोट्टैयूर में हुआ। प्राथमिक शिक्षा उन्होंने कराईकुड़ी के एसएमएस विद्याशाला से ग्रहण की और मद्रास (अब चैन्नई) के प्रेसिडेंसी कॉलेज से साहित्य में एम.ए. किया।

चेट्टियार शिक्षा में उच्च कोटि के प्रतिभाशाली छात्र थे। वे 1930 में 21 वर्ष की आयु में लंदन के चार्टर्ड बैंक में पहले भारतीय थे जो प्रशिक्षण प्राप्त करने गए थे। इसके तुरंत बाद वे मिडल टेंपल, इंग्लैंड के बार के लिए उत्तीर्ण हो गए और 'बार-एट-लॉ' बन गए जिससे चेट्टिनाड क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। वे साहसी प्रकृति के व्यक्ति थे। क्रॉयडॉन इंग्लैंड से उन्हें पायलट का प्रमाण-पत्र मिला। श्रेष्ठता के लिए उनकी लगन पक्की थी। मद्रास और अन्नामलाई, दोनों विश्वविद्यालयों से उन्हें डॉक्ट्रेट की मानद उपाधियां प्राप्त हुई। ब्रिटिश हुकूमत ने भी उद्यमी के रूप में उनके शानदार रिकॉर्ड का सम्मान किया और 1945 में 37 वर्ष की आयु में नाइट की उपाधि प्रदान की। भारत की आजादी के बाद उन्होंने इस प्रतिष्ठित उपाधि का परित्याग कर दिया।

सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद, डॉ. चेट्टियार ने विदेशी शासन के आधीन नौकरी नहीं करने का फैसला किया। देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए यहाँ उद्योग-धन्धों को स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक था। इस दिशा में डॉ. चेट्टियार ने सर्वप्रथम कपड़ा उद्योग में कदम रखा। मलाया के रबर बागान, केरल के कपड़ा उद्योग, कोलकता की बीमा कंपनियां, मुंबई के होटल,चैन्नई के थियेटर, विकासशील शेयर दलाल कंपनी और एक निजी एअरलाइन आदि स्थापित करके एक बड़ा औद्योगिक एम्पायर तैयार किया।

भारत की स्वतंत्रता के बाद 1947 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के उस आह्वान पर जिसमें उन्होंने उद्योगपतियों को देश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में सहायता प्रदान करने को कहा था, उन्होंने तुरंत ही विश्वविद्यालय से तत्कालीन कुलपति डॉ. ए. लक्ष्मणस्वामी मुदलियार से प्रेरणा पाकर और उन्हीं के कुशल



मार्गदर्शन में अलगप्प प्रौद्योगिकी कॉलेज की स्थापना की और इसे मद्रास विश्वविद्यालय से संबद्ध करवाया। इस कॉलेज में रसायन इंजीनियरिंग, टेक्सटाइल इंजीनियरिंग और लेदर टेक्नॉलाजी में स्नातक स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसके बाद उदारपूर्वक दान के बल पर कराईकुडी में 1000 एकड़ के परिसर में अनेक शिक्षण संस्थान स्थापित किये, जिसमें अलगप्प स्कूल शामिल था, जहां बच्चों को प्राथमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर की उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी, अलगप्प पॉलीटेक्नीक, अलगप्प इंजीनियरिंग कॉलेज, अलगप्प आर्ट्स कॉलेज, अलगप्प टीचर्स कॉलेज, शारीरिक शिक्षा कॉलेज आदि प्रमुख हैं। इन सभी संस्थानों ने तमिलनाडु सरकार द्वारा 1985 में अलगप्प विश्वविद्यालय की स्थापना के आधार पर कार्य किया।

अनेक शिक्षण संस्थानों की स्थापना के अतिरिक्त डॉ. चेट्टियार ने एक इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना के लिए अन्नामलाई विश्वविद्यालय को भी उदारतापूर्वक दान किया। महान गणितज्ञ रामानुजम की स्मृति में चेन्नई स्थित रामानुजम इंस्टीट्यूट ऑफ मैथमेटिकल साइंसेस की स्थापना का विचार डॉ. अलगप्प चेट्टियार का ही था।

डॉ. चेट्टियार ने महात्मा गाँधी के कहने पर ''ठक्कर बाबा विद्यालय'' की भी स्थापना की, जिसका उद्घाटन स्वयं गाँधीजी ने किया था। त्रिचूर के नजदीक अलगप्पापुरम नामक टाउनशिप, एर्णाकुलम के महाराजा कॉलेज का देशी चिकित्सा अनुसंधान विभाग, त्रिवेंद्रम विश्वविद्यालय का तमिल शोध विभाग उनकी समग्र दृष्टि के प्रमाण हैं।

आर.एम. अलगप्प चेट्टियार को 26 जनवरी, 1956 को भारत के राष्ट्रपति ने पद्म भूषण से अलंकृत किया। मात्र दो दशकों के अंतराल में उन्होंने एक सफल उद्योगपति और प्रबुद्ध अकादमिक के तौर पर अपनी बहुमुखी प्रतिभा को बखूबी सिद्ध किया और परिवर्तन का ऐसा दर्शन प्रस्तुत किया जिसने कराईकड़ी जंगल-झांड़ को शिक्षा के प्रमुख केन्द्र में परिवर्तित कर दिया। प्रारब्ध अपनी दिशा स्वयं तय करता है समाज और देश के बहुमुखी होनहार व्यक्ति को उसने अधिक समय तक कार्य करते रहने नहीं दिया। उनका बहुत ही अल्पायु केवल 48 वर्ष के होने पर 5 अप्रैल 1957 को बीमारी के कारण देहावसान हुआ।

# (40) डॉ. लक्ष्मी मल सिंघवी

**भारत सरकार ने डा. लक्ष्मीमल सिंघवी के सम्मान में 8 दिसम्बर 2008 को 5 (पाँच) रूपये की 4 लाख डाक टिकटें जारी की।**

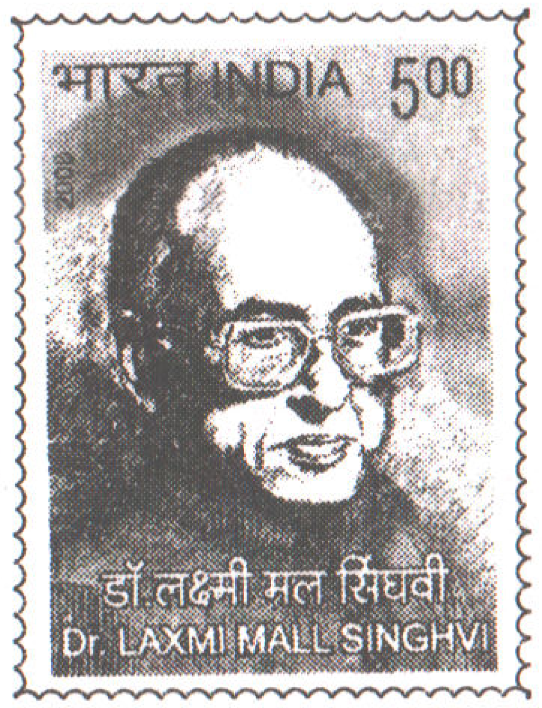


डॉ. सिंघवी का जन्म 9 नवम्बर, 1931 को जोधपुर में हुआ था। वे जोधपुर के एक प्रसिद्ध वकील और स्वतंत्रता सेनानी श्री दशरथ मल सिंघवी के दूसरे पुत्र थे। यह ''सरस्वती पुत्र'' (जैसा कि भारत के पूर्व प्रधानमंत्री ने उन्हें कहा था) एक मेधावी छात्र थे जो कक्षा छः से लेकर पी.एच.डी. करने तक लगातार छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे। उन्हें 18 वर्ष की छोटी सी उम्र में ''साहित्य वाचस्पति'' (स्नातकोत्तर के समकक्ष) की उपाधि प्रदान की गई। वे किशोरावस्था ही से एक मशहूर लेखक एंव कवि थे। वे इलाहबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. में स्वर्ण पदक तथा जयपुर विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. और एम.ए. की उपाधि प्राप्त कर एल.एल.एम. के लिए हार्वर्ड विश्वविद्यालय में राजस्थान के प्रथम रोटरी स्कॉलर बने। उन्होंने अमरीका के कॉरनेल विश्वविद्यालय से रिकॉर्ड दो वर्षों में पी.एच.डी. की और उन्हें बर्कले, केनिफोर्निया के शिक्षण विभाग में नियुक्त किया गया। उन्होंने अपने शानदार शिक्षण करियर को बीच में ही छोड़ दिया और पिता के आग्रह पर 1957 में भारत वापस आ गए। डॉ. सिंघवी ने राजस्थान, इलाहाबाद, कोलकाता, दिल्ली, उस्मानिया, आंध्र और जबलपुर विश्वविद्यालयों से अवैतनिक डाक्टरेट की उपाधियां प्राप्त कीं। वे भारत के उच्चतम न्यायालय के अग्रणी वरिष्ठ एडवोकेट थे तथा शीर्षस्थ न्यायालय बार एसोसिएशन के चार बार अध्यक्ष रहे। उन्होंने 26 नवम्बर को अब देश भर में मनाए जाने वाले ''कानून दिवस'' की अवधारणा की तथा उसकी नींव रखी। डॉ. सिंघवी की न्याय की स्वतंत्रता पर रिर्पोट तथा न्याय की स्वतंत्रता विषय पर संयुक्त राष्ट्र की विशेष के रूप में लिखी गई उनकी प्रारूप सार्वभौम घोषणा (1987) की विश्व भर में तारीफ की गई। उनकी न्यायपालिका की स्वतंत्रता संबंधी दिशा-निर्देशों को दुनिया भर में सरकारी तौर पर ''सिंघवी सिद्धांतों'' के रूप में जाना जाता है। डॉ. सिंघवी को 1987 में इंग्लैण्ड के सर्वोच्च सम्मानों में से एक ''ऑनरेरी बेंचर एवं मास्टर आफ दी मिडिल टेंपल'' के लिए चुना गया। डॉ. सिंघवी संस्कृत में निपुण थे, वे इसमें बातचीत कर सकते थे और उनको भारत के प्राचीन साहित्य की गहरी जानकारी थी। डॉ. सिंघवी को हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों में मंत्रमुग्ध करने वाले वक्ता के रूप में जाना जाता है।



डॉ. सिंघवी का इंग्लैंड में भारत के उच्चायुक्त के रूप में सबसे अधिक कार्यकाल (1991-97) रहा। इस अवधि को भारत-इंग्लैंड संबंधों का स्वर्णकाल माना गया। उन्होंने लंदन में नेहरू केन्द्र की स्थापना की जिसे अब भारतीय सांस्कृतिक राजनीति का केन्द्र माना जाता है। हुल, एडिनबर्ग, वेल्स, लंदन और लीस्टर समेत विभिन्न ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में डॉ. सिंघवी के नाम पर अनेक शैक्षिक पाठ्यक्रमों, पीठों या व्याख्यानों की स्थापना की गई। हुल विश्वविद्यालय में डॉ. एल.एम. सिंघवी भारतीय अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गई। लॉर्ड चांसलर, हाउस ऑफ कामंस के स्पीकर, लॉर्ड चीफ जस्टीस, द मास्टर ऑफ रोल्स एवं लॉर्ड टेंपलमैंन के सक्रिय संरक्षण तथा सहयोग से लंदन में डॉ. एल.एम. सिंघवी फाउंडेशन की स्थापना की गई है। डॉ. सिंघवी को इंग्लैंड में रोटरी इंटरनेशनल के उत्कृष्टता पुरस्कार के प्रथम एम्बेस्डर का सम्मान और यू. थांट शांति पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया।

डॉ. सिंघवी को तीसरी लोकसभा के लिए जोधपुर से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुना गया और उत्कृष्ट सांसद के रूप में जाना गया। उन्होंने विशेष योग्यता के साथ अनेक महत्वपूर्ण पद संभाले। भारत सरकार की एक समिति पंचायती राज संस्थानों का पुनरूज्जीवन' के अध्यक्ष के रूप में उनकी सिफारिशों और प्रारूप संशोधनों को 73वें संविधान संशोधन' के द्वारा संविधान में शामिल कर लिया गया है। उन्होंने भारत में ओमबुडस्मैन प्रणाली की वकालत की तथा वे 'लोकपाल' और 'लोकायुक्त' जैसे शब्दों के निर्माता थे।

डॉ. सिंघवी को, 1973 में, विधि के क्षेत्र में सबसे पुराने और सर्वाधिक सम्मानित पीठों में से एक, कोलकाता विश्वविद्यालय से आनरेरी टैगोर कानून प्रोफेसर के रूप में चुना गया। वे राष्ट्रमंडल विधि शिक्षा संघ, लंदन के संस्थापक-अध्यक्ष (अब ऑनरेरी संरक्षक) थे। उन्हें लीस्टर विश्वविद्यालय में महात्मा गांधी प्रोफेसर चुना गया। डॉ. सिंघवी बंगलादेश, नेपाल और दक्षिण अफ्रीका के संविधान के निर्माण से जुड़े रहे और परामर्श दिया।

उनको जनवरी 1998 में ''पद्म भूषण'' से सम्मानित किया गया। डॉ. सिंघवी ने एक सच्चे नव जागरण व्यक्तित्व और बहुप्रतिभाशाली विचारवान व्यक्ति के रूप में भारत को विश्वभर में फैले इसके बच्चों से जोड़ते हुए समूचे डायसपोरा आन्दोलन का नेतृत्व किया। सरकार की उच्चाधिकार प्राप्त समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ. सिंघवी नेसेंट आन्दोलन पर अपनी सेमिनल और समग्र रिपोर्ट के बाद इस आन्दोलन का संचालन, संरक्षण किया और उसको बढ़ावा दिया। वे प्रवासी भारतीय दिवस 2003 और 2004 के अध्यक्ष रहे। भारत सरकार ने उनकी सिफारिश पर 9 जनवरी को प्रवासी दिवस के रूप में घोषित किया

और अप्रवासी भारतीयों और पीआईओ को ''प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार'' से सम्मानित करना प्रारम्भ कर दिया।

डॉ. सिंघवी जमना लाल बजाज और ज्ञानपीठ पुरस्कारों के लिए प्रवरमंडल के अध्यक्ष और भारतीय विद्या भवन अंतर्राष्ट्रीय के सहअध्यक्ष रहे। बजाज पुरस्कार गांधीवादी कार्य के लिए सर्वोच्च पुरस्कार और ज्ञानपीठ पुरस्कार साहित्य में नोबेल पुरस्कार के समकक्ष है।

डॉ. सिंघवी 1993 में वियना में आयोजित संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के अध्यक्ष थे। फरवरी-मार्च, 1998 में, स्टॉकहोम में संस्कृति और विकास विषय पर आयोजित अभी तक के सबसे बड़े अंतर्सरकारी सम्मेलन में वे भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता थे। अंतर धर्म सद्भाव के लिए डॉ. सिंघवी के अग्रणी और समर्पित कार्य को दुनिया भर में स्वीकार किया गया। उनको 1994 में, इसाइयों और यहूदियों की अंतर्राष्ट्रीय परिषद की ओर से केंटरबरी के आर्कबिशप द्वारा लामबेथ महल में अंतर धर्म स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। डॉ. सिंघवी अंतर धर्म आन्दोलन के जाने-माने विद्वान थे और 1993 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद के शताब्दी समारोह में वे चुने गए अध्यक्षों में से एक थे जिसमें उन्होंने प्रसिद्ध भाषण दिया।

डॉ. सिंघवी को 1992 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में 500 से भी अधिक साल पुराने अत्यधिक प्रतिष्ठित पद ''रीडे चेयर'' के रूप में भी चुना गया। उन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय स्थित न्यू लॉ लाइब्रेरी में एक वृक्ष लगाने के लिए भी आमंत्रित किया गया। डॉ. सिंघवी ने यूनेसको के कार्यपालक बोर्ड (2002-2005) के सदस्य के रूप में कार्य किया। वे 1960 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में सांविधिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान (आईसीपीएल) के संस्थापक अध्यक्ष और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के अध्यक्ष (2000-05) थे। वे एक दशक से ऊपर तक भारतीय लेखक संघ के अध्यक्ष रहे।

डॉ. सिंघवी की मित्रता की संपदा ही उनकी सच्ची धरोहर है। ऊर्जावान व्यक्तित्व, प्रकृति से शांत, आदतों में परिपक्वता, व्यवहार में विनम्रता, निर्णय में तार्किकतता, कार्य में तत्परता, पहनावे में सादापन और व्यवहार में प्रभावशीलता-ये उनके व्यक्तित्व की पहचान हैं। वे प्राचीन भारतीय चिंतन, संस्कृति और सभ्यता के सनातन प्रतीक और चमकदार निशानी हैं। उनका देहावसन 6 अक्टूबर 2007 को हुआ। पीछे वे अपने पुत्र अभिषेक सिंघवी विख्यात एडवोकेट और कांग्रेस पार्टी के प्रवक्ता व पौत्र अनुभव सिंघवी व अविष्कार सिंघवी का परिवार छोड़कर गये।

(साभार : पोस्ट आफिस ब्राउचर)



## (41) श्री कृष्ण कुमार बिडला

**भारत सरकार ने श्री कृष्ण कुमार बिडला के सम्मान में 13-03-2009 को 5 (पाँच) रूपये मूल्य की 8 (आठ) लाख डाक टिकट जारी की। इसी प्रकार उनके पिताश्री घनश्याम बिडला के सम्मान में ''जून 1984 को 50 पैसे मूल्य की डाक टिकट जारी की गई थी।**

श्री कृष्ण कुमार बिडला का जन्म 11 नवम्बर 1918 को राजस्थान प्रान्त के पिलानी में हुआ था। उनके पिताजी के दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी का नाम दुर्गादेवी और दूसरी का महादेवी था। इन दोनों पत्नियों की मृत्यु तपेदिक की बीमारी से हुई जिसका उन दिनों कोई उपचार नहीं था।

श्री कृष्ण कुमार बिडला ने अपने पिताजी से प्राप्त विरासत को बड़ी बुद्धिमानी और कुशलता से वहन किया। उनमें अपने पिताजी की भाँति धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों में रूचि थी। उनको भगवत्-गीता की गहरी समझ थी। कोलकाता में लगभग बाइस हजार वर्ग फीट मे राधा-कृष्ण मंदिर बनवाया। यह मंदिर नगर वासियों और पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं। कला और भव्यता उसके झिलमिलाते संगमरी मुख्य द्वार आधुनिक कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। वे हाथियों, पुष्पों और घंटियों से सजे हुए हैं।

जहाँ धर्म आत्मिक और अध्यात्मिक सुख के लिए आवश्यक है, श्री कृष्ण कुमार बिड़ला शिक्षा को जीवन को सुधारने और प्रगति के लिए आवश्यक मानते थे। साधारण विद्यार्थियों को भी तकनीक शिक्षा मिले, इसके लिए उनके पिताजी द्वारा स्थापित बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलोजी का विस्तार किया। पिलानी कैम्पस से बाहर गोवा और हैदराबाद तथा दुबई में भी कैम्पस खोले। इससे शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या नौ हजार से बढ़कर चौबीस हजार से ऊपर हो गई। वे इस संस्था के चैयरमैन (अध्यक्ष) और चांसलर (कुलाधिपति) दोनो थे। श्री कृष्ण कुमार बिड़ला एक प्रगतिशील उद्योगपति होने के साथ-साथ राजनीति में सक्रिय रहें। जब वे एक युवक थे, उन दिनों स्वाधीनता आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहा था। जब वे दिल्ली में प्रवास करते थे, "वे बिड़ला हाउस में आकर ठहरते थे। इस प्रकार बिड़ला जी का महात्मा गांधी से नजदीकी सम्पर्क हो जाता था। महात्मा गांधी जो भी कार्य उनको सौंपते थे, वे

सहर्ष और हार्दिक समर्पण भावना से पूरा करते थे। बिड़ला हाउस की सभी प्रकार की व्यवस्था में वे व्यक्तिगत रूप से देखभाल रखते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बिड़ला जी ने कांग्रेस पार्टी से सम्बन्ध बनाये रखा। वे इसके आजीवन सदस्य बन गये। उद्योग जगत से समन्वय के लिए सरकार और पार्टी द्वारा उनको एक सुयोग्य और प्रक्षिष्ठित व्यक्ति माना गया। इसलिए, सर्वप्रथम उनको राज्य सभा में नामजद सदस्य लिया गया। बाद में 1984 से 2002 के बीच 3 (तीन) कार्यकालों में राज्य सभा के चुनाव से सांसद रहें। यह श्री बिड़ला की उपयोगिता दर्शाती है। अब उनकी पुत्री शोभना भारतीय ससंद की सदस्य है। सन् 1997 में वे कलकत्ता महानगर के "शैरिफ" बनाये गये। उनकी विद्वत्ता को देखते हुए पुद्दिचरी विश्वविद्यालय की सेनेट ने "डाक्टर आफ लेटर्स" (डी.लिट्) की उपाधि देकर सम्मानित किया।

श्री कृष्ण कुमार बिड़ला भारत में चीनी उद्योग के जनक माने जाते है। उन्होंने अपने उद्योग समूह का विकास एवं विस्तार किया। चम्बल फर्टिलाइजर एंड केमिकल्स लि., जुआरी इन्डस्ट्रीज लि., टेक्समेको, सतलुज टेक्सटाइल्स और एंड इंडस्ट्रीज लि., इसके उदाहरण है।

मिडिया राजनैतिक, औद्योगिक और शैक्षणिक प्रगति के लिए महत्वपूर्ण साधन होता है। हिन्दी का हिन्दूस्तान, अंग्रेजी भाषा मे "मिन्ट" व हिन्दूस्तान टाइम्स उनकी अध्यक्षता में संचालित थे। वे मनोरंजन के लिए ताश अवश्य खेलते थे, परन्तु समय का उपयोग उत्पादक हो, इसका वे ध्यान रखते थे। उन्होंने तीन पुस्तकों– इंदिरा गाँधी: रेमिनिसेंसेज, पार्टनर इन प्रोग्रेस और आत्मकथा-ब्रशेज विद हिस्ट्री की रचना की। खेलजगत में उन्नति और विकास के लिए "ब्रिज फैंडरेशन आफ इंडिया और लान टेनिस एसोसिएशन के अध्यक्ष रहकर कार्य किया। के. के. बिरला फाउंडेशन भारतीय साहित्य, वैज्ञानिक अनुसंधान, भारतीय दर्शन, कला और संस्कृति के क्षेत्रों में प्रतिभाशाली व्यक्तियों को प्रोत्साहन और प्रेरणा के लिए पुरस्कार प्रदान करता है।

श्री कृष्ण कुमार बिड़ला अपनी तीन पुत्रियों नंदिनी, शोभना और ज्योति सहित अपने भतीजों, नाती, पोते, पोतियों, अपने उद्योग समूह में कार्यरत लाखों कर्मियों, देश विदेश में रह रहे अपने प्रशंसकों का भरा परिवार छोड़कर 30 अगस्त 2008 को प्रात: 7:30 बजे कोलकता के अपने पैतृक निवास स्थान पर परलोक सिधार गये।



# (42) श्री राम चरण अग्रवाल

**भारत सरकार के डाक विभाग ने श्री राम चरण अग्रवाल के सम्मान में 25 जुलाई 2009 को 4 लाख टिकटें जारी की**

श्री रामचरण चरण अग्रवाल का जन्म 2 दिसम्बर 1917 को उत्तर प्रदेश मे स्थित नजीबाबाद में ला. रामचन्द्रमल के घर हुआ। उनका पैतृक पेशा व्यापार था। उन्होंने जीवन में जो किया, जिस मार्ग को अपनाया, उनकी विरासत को उनके सुपुत्र श्री जयप्रकाश अग्रवाल, दिल्ली (पूर्व) के लोक प्रिय सांसद व दिल्ली प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष ने कुशलता और योग्यता से आगे बढ़ाया।

श्री रामचरण अग्रवाल का राजनैतिक जीवन ब्रिटिश साम्राज्य के अत्याचारों से मुक्ति के लिए कांग्रेस पार्टी द्वारा आरम्भ किये सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने से शुरू हुआ। उनमें व्याप्त जूनून ही था कि जब एक नवयुवक घर-गृहस्थी में रमा हुआ होता है, वे 1939, 1942 और 1945 में तीन बार जेल-यात्रा पर गये। क्योंकि लालाजी दिल्ली नगर के व्यापारिक केन्द्र चान्दनी चौक में रहते थे और क्रांग्रेस पार्टी को स्वाधीनता संर्घष को जारी रखने के लिए धन की आवश्यकता होती थी, श्री रामचरण अग्रवाल को मात्र 19 वर्ष की आयु में कोषाध्यक्ष नियुक्त किया गया। वे हमेशा व्यापारी वर्ग के नजदीक रहे और उनके दुख-दर्द में सदैव उपलब्ध रहें। इसी कारण वे सभी के प्रिय व सम्मानीय व्यक्ति थे उनके बड़े कार्यो को देखते हुए उनको "लिटिल बिग मैन" कहा जाता था। वे कद और काठी से छोटे थे, परन्तु जोश और साहस में असीम थे इसी कारण स्वाधीनता आन्दोलन के जत्थो का सफलतापूर्ण नेतृत्व किया। उन दिनों सत्याग्रह-आन्दोनल का केन्द्र चान्दनी चौक का "टाउन हाल" होता था यही पर विदेशी शासक भी होते थे।

देश को 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। तब श्री रामचरण अग्रवाल की आयु मात्र 30 वर्ष थी। परिवार वालों के आग्रह को मानते हुए गृहस्थ धर्म को निबाहा। जिस व्यक्ति ने स्वाधीनता के लिए विदेशियों से संघर्ष किया हो, अब उनको जन-सेवा का अवसर था। उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र दिल्ली ही रखा। लोगों के बीच रहकर उनकी सेवा करने में आनन्द आता था। दिल्ली के 'मालीवाड़ा' से चुनाव लड़ते थे। 1958 और 1962 में दो बार कौसंलर चुने गये।

उनके सेवाभाव को देखते हुए उनको दो बार ''डिप्टी मेयर'' बनाया गया।

श्री रामचरण अग्रवाल केवल एक सिद्धान्तवादी कांग्रेस के कार्यकर्त्ता ही नहीं थे, वरन् पक्के गाँधीवादी भी थे। वे **मोटे** हाथ से बने के परिधान का प्रयोग करते थे। सिर पर गाँधी टोपी होना उनकी पहचान थी। जिस पद पर रहे, जो भी दायित्व उनको दिया गया, उसे पूरी ईमानदारी और समर्पित भाव से निभाया। वे एक दूरदृष्टा और दूरदर्शक थे। गरीबों को स्थाई रोजगार मिले, इसके लिए उन्होंने नगर-निगम से ''तहबाजारी'' आरम्भ करवाई। दिल्ली नगर में गरीब और असहाय व्यक्तियों की अनाधिकृत कालोनियों में सुधार और विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

श्री रामचरण अग्रवाल की सक्रियता और जन-सेवाभाव के कारण देश के नतोओं में उनकी चर्चा होती थी। उनको सम्मान मिलता था। अपने जीवन में उन्होंने पं. जवाहरलाल नेहरू और श्रीमति इंदिरा गाँधी का शासन काल देखा। इन दोनों ही नेताओं ने अग्रवाल जी की समय-समय पर भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे 1966 में नवगठित मैट्रोपालिटन काउंसिल के लिए चूने गये।

देश और समय किसी नेता के कार्यो को नहीं भूलाता। दिल्ली नगर में सबसे अधिक ट्रैफिक वाला आई.टी.ओ. क्रासिगं वाले चौक का नाम ''रामचरण अग्रवाल'' चौक रखा गया है। उनका स्वर्गवास 25 जुलाई 1977 को हुआ



# (43) दिनेश-नंदिनी डालमिया

**भारत सरकार ने दिनेश-नंदिनी डालमिया के सम्मान में 11 अक्टूबर 2009 को 5 ( पाँच ) रूपये मूल्य की 4 ( चार ) लाख टिकटें जारी की।**

कुछ लोगों के कंठ और मस्तिष्क में मां सरस्वती का वास जन्म के समय ही होता है। इसके उदाहरण भारतेन्दू बाबू हरिश्चन्द्र और कविवर जयशंकर प्रसाद हैं। दिनेश-नंदिनी को भी उसी श्रेणी में माना जाये तो अतिशंयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि उन्होंने 13 वर्ष की आयु में ही ''दिनेश-नंदिनी चोरदिया'' के नाम से लिखना शुरू किया था।

दिनेश-नंदिनी डालमिया उद्योगपति रामकृष्ण डालमिया की तीसरी पत्नी थी उनका जन्म उदयपुर में 16 जनवरी सन् 1928 में हुआ था। रामकृष्ण डालमिया की जन्म शताब्दी के अवसर पर ''कर्मयोगी श्री रामकृष्ण डालमिया स्मृति ग्रन्थ'' 980 पृष्टों वाला श्री हरिशंकर द्विवेदी और जयदयाल डालमिय के सयुंक्त प्रयास से प्रकाशित हुआ। उसमें दिनेश नंदिनी को अन्य बातों के साथ 'सरल हृदया '' बताया गया है। इन दो शब्दों से उनके स्वभाव और कृत्यों में क्या हो सकता है उसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

दिनेश नदिंनी डालमिया के सम्मान में भारत सरकार ने डाक टिकट जारी किया। यह इसलिए नहीं की वे एक अमीर उद्योगपति घराने से थी। सरकार ने जारी किये प्रपत्र में उनके बारे में बताया, ''शुरू-शुरू में जब उनकी कविता "निराश आशा'' प्रकाशित हुई तो इस कविता ने सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा जैसी अनुभवी कवयित्रियों का भी ध्यान आकर्षित किया था। उनकी पहली किताब ''शबनम'' ने पाठकों पर गहरा प्रभाव डाला और उन्हें ''सकसेरिया'' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। गद्य कविताओं के कई सफल प्रकाशनों के बाद उन्होंने कविता, लघु-कथा एंव उपन्यास साहित्य की रचना की। वर्ष 2006 में उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया गया।''

दिनेश नंदिनी-डालमिया एक महिला कवयित्री और लेखक थी इसलिए उनकी संवेदनाए इस वर्ग के साथ होना स्वाभाविक था। राजस्थान प्रदेश में रूढ़िवादिता और सामाजिक बन्धन में वे बुरी तरह से जकड़ी हुई है। उनके लिए शिक्षा अनावश्यक माना जाता है। ऐसे वातावरण में दिनेश नंदिनी ने जब

स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण की तो उनको ऐसा करने वाली पहली महिला का गौग्व प्राप्त हुआ। पर्दा प्रथा का विरोध किया। स्वतन्त्र और आत्म-संयमित जीवन जीने की हिमायत की। लिंग भेद के विरोध में आवाज बुलन्द की।

दिनेश-नंदिनी डालमिया जिस प्रकार मनचाही जिन्दगी जीने की आजादी रखी, उसी प्रकार लेखन कार्य में उनकी कलम किसी विद्या या शैली से बन्धकर नहीं चली। उन्होंने कविता की प्रचलित स्वच्छंदवादी शैली के सीमित क्षेत्र से बाहर निकलकर एक नये अदांज और स्वरूप में ''गद्यकाव्य'' में लिखा। अपराध स्वीकारोक्ति सम्बन्धी कविताऐं लिखने वाली पहली कवयित्री थी उस समय हिन्दी स्वंच्छंदतावादी कविता अपने चरमोत्कर्ष पर थी। वे स्वच्छंदवाद से अछूती नहीं थी। इसकी झलकी उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। वे अपने असाधारण काव्य-कौशल और काव्य-विषय-वस्तु के कारण अपने पूर्ववर्ती और समकालीन रचनाकारों दोनों से बिल्कुल भिन्न थी।

दिनेश-नंदिनी का जीवन विभिन्न अनेक कार्यों में लगा रहा। आवश्यकता के अनुसार नई संस्थाओं को स्थापित करके संचालन भी किया। उन गतिविधियों के आधार पर विभिन्न संस्थाओं ने उनको उपाधि और सम्मान प्रदान किये। इंस्टिट्युट आफ कंपैरिटिव रिलिजन एंड लिटरेचर, इंडो चाइना फ्रेंडशिप सोसायटी, लेखिका संघ की संस्थापक सदस्या और अध्यक्ष थी। वे अनेक टी. वी. धारावाहिकों की साहित्यिक परार्मशदात्री थी। उनके उपन्यास ''फूल का दर्द'' पर बहुचर्चित टेली फिल्म भी बनी है।

दिनेश-नंदिनी डालमिया के उच्चकोटि के कार्यो और साहित्यिक कृतियों के आधार पर रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय (जबलपुर) द्वारा उनको 2005 में डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की गई। 2001 में हिन्दी साहित्य अकादमी (दिल्ली) द्वारा उन्हें 'महिला सशक्तिकरण पुरस्कार' प्रदान किया गया। उनकी रचना 'मुझे माफ करना' के लिए उनको प्रेमचंद पुरस्कार भी मिला। उनकी कथनी और करनी एक थी। यह गुण व्यक्ति में कभी-कभी देखने को मिलता है।



# (44) गौरी शंकर डालमिया

**भारत सरकार ने श्री गौरी शंकर डालमिया के सम्मान में 12 नवम्बर 2009 को 5( पाँच ) रुपये मूल्य की चार लाख डाक टिकट जारी की।**

"डालमिया" शब्द का श्री गौरी शंकर जी के नाम के साथ प्रयोग से यह लगता है कि उनके पूर्वज बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के लखीसराय गाँव में राजस्थान से आकर रहने लगे थे। यह उपनाम उन्ही अग्रवाल परिवारों ने प्रयोग में किया जिनकी राजस्थान के "डाडमा" गाँव से निकासी थी। गौरी शंकर डालमिया का जन्म 12 नवम्बर 1910 को उपरोक्त गाँव में हुआ और शिक्षा के लिए उन्हें कोलकाता जाना पड़ा। मात्र 17 वर्ष की आयु में पिताजी का साया छूट गया और उदर भरण के लिए पैतृक व्यवसाय करना पड़ा।

जिस व्यक्ति का जन्म उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ हो, उसको देश की दासता देखने को अवश्य मिली होगी। उन दिनों स्वाधीनता आन्दोलन महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चल रहा था। देश के प्रत्येक वर्ग के लोग विशेषकर नौजवान उनके आह्वान पर तन-मन-धन सभी कुछ कुर्बान करने के लिए तैयार थे। गौरी शंकर डालमिया पर प्रभाव न पड़े, ऐसा नही हो सकता। मात्र 16 वर्ष की आयु में स्वतन्त्रता के संघर्ष मे कूद पड़े। महात्मा गाँधी का साथ देने के लिए पारिवारिक व्यवसाय से मुक्ति प्राप्त करके संथाल परगना के एक गाँव जसीदीह में रहने लगे। खादी का प्रयोग करने लगे और पूर्णकप से गाँधीवाद को समर्पित हो गये। 1931 में नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण जेलयात्रा की। 1936 में उन्होनें संथाल "पहाडिया सेवा मंडल'' की स्थापना की और उसके महासचिव बने। इस संस्था के माध्यम से उन्होने बिहार के आदिवासी लोगों को देश की स्वाधीनता के कार्य से जोड़ा।

श्री गौरी शंकर डालमिया का कार्य क्षेत्र स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बहुयामी रहा। शिक्षा, उद्योग, स्वास्थ्य और राजनैतिक प्रगति के लिए कार्य करते रहे। वे भागलपुर विश्वविद्यालय सीनट के सदस्य रहे। वे फिक्की, नई दिल्ली एवं इंडियन एम्प्लायर्स एसोसियन की कार्य समिति के सदस्य थे। 1937 से 1952 तक बिहार विधान सभा और 1952-1972 तक बिहार विधान परिषद के सदस्य चुने गये। बिहार के पिछड़ेपन का मुख्य कारण, इस प्रान्त में उद्योगों की कमी थी। इसलिए उन्होनें साउथ बिहार चैंबर आफ कामर्स का गठन किया और

लगभग 20 वर्षो तक इसके अध्यक्ष बने रहे। 13 वर्ष तक बिहार इंडस्ट्रीज एसोसिएशन के अध्यक्ष रहे। बिहार चैम्बर्स आफ कामर्स पटना के दो कार्यकाल अर्थात 4(चार) वर्ष तक अध्यक्ष रहे।

श्री गौरी शंकर डालमिया ने शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में जो कार्य किये उनकी तुलना में कोई अन्य व्यक्ति उस क्षेत्र में दिखाई नहीं देता। कुष्ठ रोग उन्मूलन, विक्लांग व्यक्तियों के पुनर्वास, आदिवासियों के उत्थान के लिए सक्रिय कप से भाग लिया। 40 सेवा केन्द्र और दवाई–वितरण केन्द्रों तथा 3 अस्पतालों के माध्यम से कुष्ठ रोगियों की सेवा की। आदिवासियों की चिकित्सा के लिए पाद गिरी एवं समतल क्षेत्रों में 2 चिकित्सा केन्द्रों तथा अन्य स्थानों पर 10 चिकित्सा केन्द्रों (अस्पतालों) की स्थापना की।

शिक्षा मनुष्य के जीवन में प्रकाश और नये जीवन का उजाला प्रदान करती हैं। इससे प्रगति के सभी मार्ग मिलते है। गौरी शंकर डालमिया ने इस सत्य को स्वीकार करते हुए इस क्षेत्र में कार्य किया। 200 प्राथमिक विद्यालयों, 4 छात्रवासों, 24 बालबाडियों और शिशुपालन केन्द्रों की स्थापना की

पत्रकारिता में भी उनकी रूचि थी। दो दशकों तक हिन्दी भाषा में 'प्रकाश' एवं अंग्रजी में 'spark' स्पार्क शीर्षक से साप्ताहिक पत्रिकायों का प्रकाशन किया। 1950 के बाद, उन्होनें संथाली एवं नागरी में कई पुस्तकें प्रकाशित करवाई। संथाली भाषा के लिए नागरी लिपि स्वीकृत कराने के लिए प्रयास किये और सफल भी हुए। उनका 16 अगस्त 1988 को लगभग 78 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ।



# (45) वीरचन्द राघव जी गाँधी

**भारत सरकार ने वीरचन्द राघवजी गाँधी के सम्मान में 8 नवम्बर 2009 को 5( पाँच ) रुपए के मूल्ये की 4( चार ) लाख डाक टिकट जारी की।**

श्री वीरचन्द राघवजी गाँधी का जन्म 25 अगस्त 1864 को गुजरात के महुआ में हुआ था। गुजरात में प्रथा के अनुसार 'गाँधी" कोई जाति अथवा सम्प्रदाय को नहीं दर्शाता, वरन् उस पंसारी के काम करने वाले को कहते है जो जड़ी–बूटी, नमक मसाले या हल्दी, फिटकरी आदि के बेचने का काम करता है। उन्होने प्राथमिक शिक्षा–दीक्षा स्थानीय विद्यालय में और उच्च शिक्षा भावनगर में प्राप्त की। एलफिन्स्टन कालेज (मुबंई) में आनर्स के साथ स्नातक की पढ़ाई पूरी की। कानून की शिक्षा के लिए वे इंगलैंड गये और बैरिस्टर बनकर स्वदेश लौट आये।

श्री वीरचन्द राघवजी गाँधी जिस आयु में स्वदेश लौटकर आये थे; उस आयु में युवक पूर्णरूप से पाश्चात्य संस्कृति, वेशभूषा और भाषा में परिवर्तित हो जाना स्वाभाविक और प्राकृतिक होता है। परन्तु इस युवक पर ऐसा कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होने अध्यात्मिक मार्ग को अपनाया और जैनधर्म का गहराई से अध्ययन किया। 21 वर्ष की छोटी आयु में ही वे जैन एसोशिएसन आफ इंडिया के मानद सचिव नियुक्त किये गये। वे चौदह भाषाओं में पारंगत थे। उन्होनें धार्मिक अध्ययन केवल जैन धर्म तक ही सीमित नहीं रखा। उन्होंने बौद्ध और ईसाई धर्म से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन किया। हिन्दू धर्म के वेद दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। इन गहन अध्ययनों के आधार पर वे इन धर्मों की आपस में तुलना अपने प्रवचनों में श्रोताओं को बताते थे।

वीरचन्द राघव जी गाँधी एक सच्चे देशभक्त थे। 1897 में जब भारत भयानक अकाल की चपेट में था तो उन्होंने इससे राहत पाने के लिए 40,000/ रूपये और अमेरिका से भारत के लिए अनाजों से भरा जहाज भेजा था।

उन्होंने 1893 में शिकागो (अमेरिका) में आयोजित विश्व धर्म संसद में जैन धर्म का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने विभिन्न प्रकार के भारतीय दार्शिनिक चिन्तनों पर व्याखान दिये। उन्होंने कई भ्रान्तियों को दूर करते हुए भारतीय संस्कृति का समर्थन किया।

श्री वीरचन्द राघव जी का निधन 7 अगस्त 1901 को मात्र लगभग 37 वर्षो की अल्पायु में हो गया। जब इस छोटे काल में उनकी सक्रियता और कार्यो पर प्रकाश डाला जाता है तो आश्चर्य से दातों के नीचे अंगुली दबानी पड़ती है। उन्होने जैन धर्म, अन्य धर्म और भारत के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन पर लगभग 535 भाषण दिये। उन्होने भारत की आजादी की बात की। उनके भाषण की मूलभावना, संस्कृतिक और दृष्टिकोण को दिखाते है। साहित्यिक एवं आध्यात्मिक संस्थानों, चर्चो और सामाजिक संगठनों ने उनका सम्मान किया। जैन दर्शन, योग दर्शन, कर्म की अवधारणा और भारतीय धर्म की छः धाराओं पर पुस्तकें लिखी। उन्होने एक फ्रेन्च पुस्तक" एन अनमोन लाईफ आफ जीसस क्राइस्ट" का भी अनुवाद भी किया।

श्री वीरचन्द राघव चन्द जी गाँधी जी ने विदेश यात्राऐं भी की। अमेरिका में "दि सोसायटी फार दी एजुकेशन आफ वुमेन इन इंडिया" संस्था की स्थापना की। इससे जान पड़ता है कि वे महिला वर्ग में शिक्षा का कितना महत्तव मानते थे। इस संस्था के माध्यम से अमेरिका मे जाकर शिक्षा प्राप्त करना और समुचित सहायता करना था। 1895 में पुणे में आयोजित इंडियन नेशनल कांग्रेस में मुम्बई के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। यह एक उदाहरण है कि वे राजनीति को जनता की सेवा का साधन मानते थे। 1899 में उन्होंने पूरे एशिया के प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड के लंदन नगर में "अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य सम्मेलन में भाग लिया। उनकी इस प्रकार की अनेकानेक जनसेवा, राष्ट्र सेवा को समर्पित होने पर मुख्य न्यायधीश, श्री महादेव गोविन्द रानाडे ने सम्मानित किया।



# (46) देशबन्धु गुप्ता

**भारत सरकार ने देशबन्धु गुप्ता के सम्मान में 14.06.2010 को उनको जन्मदिन के अवसर पर 5 ( पाँच ) रूपये मूल्य की तीन लाख डाक टिकटें जारी की।**

देशबन्धु गुप्ता का जन्म 14 जून 1901 को हरियाणा प्रान्त के पानीपत नगर में ला. शादी राम अग्रवाल के पुत्ररूप में हुआ। उनके पिताजी देशबन्धु को आई.सी.एस. करवाना चाहते थे। अम्बाला से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा पास करने के बाद दिल्ली के सेंट स्टीफन कालेज में प्रवेश प्राप्त किया। उन दिनों देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहा था। अँग्रेज सरकार ने नागरिकों की बुनियादी आजादी को समाप्त करने के उद्देश्य से रॉलेट एक्ट देश में लागू किया। इसका भारी विरोध हुआ। महात्मा गाँधी ने भारतीयों को विदेशी वस्तुओं और सामान का बहिष्कार करने और ब्रिटिश प्रणाली से संचालित विद्यालयों और विश्वविद्यालयों का परित्याग करने का आह्वान किया। देशबन्धु ने कालेज की पढाई छोड़कर पूर्ण समर्पण से स्वतन्त्रता सघंर्ष में भाग लेना आरम्भ किया।

17 नवम्बर 1971 को प्रिंस आफ बेल्स भारत यात्रा के लिए मुम्बई पहुँचे। वहाँ से दिल्ली पहुँचने पर उनके बहिष्कार की योजना थी। यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि देशबन्धु का माता-पिता द्वारा रखा गया 'रतिराम गुप्ता' नाम था और इसी नाम से रिश्तेदारों, मित्रों और क्षेत्र में जाने जाते थे। दिल्ली में बायकाट के लिए काम करने और उसमें अभूतपूर्व सफलता मिलने पर, स्वामी श्रद्धानन्दजी ने एक मिटिंग में उनके काम के बारे में बताने के बाद खुश होकर ''देशबन्धु' कहकर पुकारा जिसका भीड़ ने करतल ध्वनि के साथ स्वागत किया। तभी से वे देशबन्धु कहलाये जाने लगे। यह जनता द्वारा दिया हुआ सम्मान था।

अब तो देशबन्धु गुप्ता के अन्दर देशभक्ति और स्वतन्त्रता आन्दोलन एक **जूनून बन गया था।** नमक कानून तोड़ने के लिए महात्मा गाँधी जी ने दांडी मार्च किया तो देशबन्धु ने अपने देशभक्त साथियों के साथ शाहदरा **राजमार्ग** पर 'नमक शिविर' लगाया और एक जूलूस निकाला। उनको और अन्य **50** लोगों को गिरफ्तार करके शाहदरा थाने में रखा गया। कोतवाली की अदालत ने उन्हें 6 महिने की सजा दी। उनकी पत्नी सोनादेवी भी पीछे नहीं रही। 3 जनवरी 1932

को जब नये वायसराय विलिंग्डन ने इर्विन-पेक्ट की धज्जियाँ उड़ाते हुए दमनकारी कार्यवाहियाँ की तो उनको अन्य महिलाओं के साथ गिरफ्तार करके 3 (तीन) महीने की जेल और दो सौ रुपये का जुर्माना किया गया।

14 जुलाई 1942 को वर्धा में ऐतिहासिक 'अग्रेंजो भारत छोड़ों' प्रस्ताव पास हुआ जिसका 7 अगस्त 1942 को मुम्बई में काँग्रेस समिति में अनुमोदन हुआ जिसमें देशबन्धु ने भाग लिया। प्रतिक्रिया में ब्रिटिश शासन ने सभी प्रथम श्रेणी के नेताओं को पकड़कर जेल भेज दिया। 11 अगस्त 1942 को देशबन्धु रेलगाड़ी से दिल्ली के लिए चले जहाँ उसको पकड़ने के लिए पुलिस बैचेन थी। यह सूचना उनके ड्राइवर ने आगरा स्टेशन पर दी। लालाजी ने वहाँ से मालगाड़ी से सफर किया। निजामुद्दीन स्टेशन पर उतरकर जोशी अस्पताल (करौल बाग) में आकर गोरखा सिपाही के वेष में आन्दोलन का संचालन किया।

वर्ष 1923 में देशबन्धु गुप्ता जी ने स्वामी श्रद्धानन्द के साथ मिलकर 'तेज' समाचार पत्र पर प्रकाशन आरम्भ किया। श्री रामनाथ गोयनका के साथ दी न्यूज क्रानिकल (अब इंडियन एक्सप्रेस) के सह-मालिक भी बने। वे दी इण्डियन एंड इस्टर्न न्यूजपेपर्स सोसायटी-आई.ई.एन.एस. अब आई.एन.एस. के संस्थापक थे और (आल इंडिया न्यूजपेपर्स एडिटर्स कॉन्फरेन्स) AINEC के अध्यक्ष थे। इसलिए उनका कर्तव्य था कि समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता बनी रहें। इसके लिए वे 'भारतीय पत्रकार सम्मेलन' में भाग लेने के लिए 21 नवम्बर 1951 को दक्षिणी-एयर-वेज के जहाज में रात्रि के साढे ग्यारह बजे पालम हवाई अड्डे से कलकत्ता जाने के लिए सवार हुए। कोलकत्ता के दमदम हवाई-अड्डे पर अधिक धुन्ध के कारण हवाई पट्टी साफ दिखाई नहीं दे रही थी जिसके कारण हवाई-जहाज दुर्घटना ग्रस्त हो गया। जिसमें उनकी मृत्यु हो गई।



# (47) लक्ष्मीपत सिहांनिया

**भारत सरकार ने लक्ष्मीपत सिंहानिया के सम्मान में 15 नवम्बर 2010 को उनकी जन्मशती के अवसर पर 5 रुपए मूल्य की 13 लाख टिकटें जारी की।**

लक्ष्मीपत सिंहानिया का जन्म 23 नवम्बर 1910 को उत्तर प्रदेश प्रान्त की व्यापार नगरी कानपुर में हूआ था उनके पिताजी का नाम ला. कमलापत सिंहानिया और माता जी का नाम रामप्यारी देवी था। जे.के. सिंहानिया 'ग्रुप का नाम उनके दादा जी ला.जुग्गीलाल द्वारा स्थापित मै.जुग्गीलाल कमलापत से पड़ा। इस परिवार की निकासी राजस्थान प्रान्त की राजधानी जयपुर के पास "सिंहना" गाँव से थी इसलिए अपनी विशिष्ट पहचान बनाने के उद्देश्य से अपने नाम के साथ 'सिंहानिया' शब्द का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया।

ला.कमलापत सिंहानिया के दो पुत्रों-ला.पदमपत् सिंहानिया जिसके सम्मान में भारत सरकार ने 3 फरवरी 2005 को डाक टिकट जारी किया, लक्ष्मीपत सिंघानिया से 5 (पाँच) वर्ष बड़े थे तथा इन दोनो भाईयों में व्यापार और ओद्योगिक क्षेत्र में किसी प्रकार की आपसी प्रतिस्पर्द्धा या टकराव आदि नहीं था वे भी अपने भाई की तरह 16 वर्ष की आयु में ही जे.के.ग्रुप के कार्यों में सलंगित हो गये थे। इस परिवार ने अपने समय में देश के वातावरण को देखा कि किस प्रकार काँग्रेस के कार्यकर्त्ता महात्मा गाँधी के आह्वान पर ब्रिटिश सरकार का सामना करते हुए शारीरिक कष्ट को सहन किया। असंख्य लोगों ने अपने जीवन की आहूति भी दे दी थी। यह परिवार इस भावना से अछूता नहीं था। परिवार से महात्मा गाँधी, मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य गंगाधर तिलक और मोतीलाल के गहरे सम्बंध थे। जैसे पिताश्री थे, उनके पुत्र भी उनसे पीछे नहीं थे।

लक्ष्मीपत सिंहानिया पर भी राष्ट्रीयता व देशभक्ति का सरूर पूरी यौवनावस्था में था उन्होनें कुछ ऐसा करने का निश्चय किया की भारतदेश प्रगतिशील स्वालम्बी हो जाये। उनके नेतृत्व और मार्गदर्शन में इस उद्देश्य के लिए कई कम्पानियाँ बनी और उद्योगों की स्थापना हुई। मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में मै.स्ट्रा प्रोडक्टस लिमिटिड, उड़ीसा के कोरापुट में पल्प एवं पेपर मिल स्थापित किये। जे.के.टायर, जे.के.लक्ष्मी सिमेन्ट उद्योग आज भी देश की सेवा कर रहे हैं। लक्ष्मीपत सिंहानियाँ ने नेशनल इश्योरेन्स के अध्यक्ष रहते हुए इसकी

कायापल्ट की। देश और विदेश में व्यापक नेटवर्क के साथ यह देश की तीसरी सबसे बड़ी बीमा कम्पनी बन गई

लक्ष्मीपत सिंहानिया उद्योगपति के साथ मानववादी और परोपकार मनोवृति वाले व्यक्ति थे। वे आल इंडिया हार्ट फांउडेशन के संस्थापकों में से एक थे। ह्दय रोग के उपचार के लिए एक अस्पताल भी खोला। अपने पिताजी की याद में कानपुर नगर में एक अस्पताल और "जे.के. इंस्टीटयूट आफ रेडियोकाली एवं कैंसर रिसर्च" स्थापित किये। निराक्षरता को सभी प्रकार की बुराईयों की जड़ मानते थे। लखनऊ विश्वविद्यालय में जे.के. इस्टीट्यूट आफ सोश्योलाँजी तथा इलाहबाद विश्वविद्यालय में जे.के.इंस्टीट्यूट आफ एप्लाइड फिजिक्स की भी स्थापना की।

उद्योंगों को सही दिशा और पथ प्रदर्शन के उद्येश्य से वे प्रेजिडेन्ट, फैडेरेशन आफ इंडियन चेम्बर आफ कामर्स एंड इन्डस्ट्री, आल इंडिया आर्गेनाइजेशन आफ एम्पलायर्स, इंडियन नेशनल कमेटी आफ दी इन्टरनेशनल चेम्बर आफ कामर्स, मर्चेंटस चेम्बर आफ उत्तर –प्रदेश, भारत चेम्बर आफ कामर्स से सम्बन्धित रहे और बोर्ड आफ गवर्नरस आफ दी इंडियन इन्सीट्यूट आफ सोसल वेलफेयर एंड बिजनेस मैनेजमेन्ट के सदस्य रहें।

इतने बड़े दायित्य वाले देश सेवक का निधन 13 नवम्बर 1976 को हो गया। मानव जाति को कितनी हानि हुई, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।



# (48) कमलापत सिंहानिया

भारत सरकार ने कमलापत सिंहानिया के सम्मान में 1 फरवरी 2010 को 5 (पाँच) रुपये मुल्य की 4 (चार) लाख टिकटें जारी की।

कमलपत सिंहानिया का जन्म 7 नवम्बर 1884 को हुआ। उनके पिताजी का नाम लाला जग्गीलाल था। वे अपने पिता ला.बलदेव दास के तीसरे पुत्र थे। सिंहानिया पारिवारिक नाम उनके 'सिंहाना' गाँव से पड़ा जो राजस्थान प्रान्त की राजधानी जयपुर के पास स्थित है। ला.बलदेव के समय में 18 वीं सदी में उनका व्यापार मै. बैजनाथ रामनाथ फर्म से मैं कानपुर कोटन मिल्स और विकटोरिया एलगिन मिल्स के एजेन्ट के रूप में करते था। 1868 से 1905 अवधि में उनके पास 3 (तीन) जूट मिल्स और एक हाड्रोलिक प्रेस और 4 (चार) फ्लोर मिल थे। व्यापार में भाइयों में बटंवारा हुआ, तब 1918 के बाद नया प्रतिष्ठान मैं जग्गीलाल कमलापत वजूद में आया।

भारत देश उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन था। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी के नेतृत्व में काँग्रेस पार्टी आन्दोलन कर रही थी अंग्रेजो का प्रमुख उद्येश्य देश में लूट–खसौट करना, इसे किसी भी प्रकार के विकास से वंचित रखना था। अपने देश के उद्योगों के लिए यहाँ से कच्चा माल मिले और भारत देश मे कोई उद्योग स्थापित नहीं हो, ऐसा प्रयास रहता था। परन्तु जून 1920 में 40,000 तकलों एवं 100 करघों वाली यूनाइटेड किंगडम की मुम्बई में स्थित काटन मिल्स को किन्हीं कारणों से बेचने का फैसला हुआ। कमलापत सिंहानियाँ ने उस मिल को खरीद लिया और तभी से "सिंहानिया" औद्योगिक ग्रुप की नीव पड़ी। अपने प्रतिष्ठान "जग्गीलाल कमलपत' से जे.के. शब्द लेकर उस मिल का नाम" "जे.के. काटन स्पिनिंग एंड विविंग मिल्स कम्पनी लिमिटिड" रखा गया।

"सिंहानिया" सिंहाना गाँव से निकासी के कारण प्रयोग करना आरम्भ किया। मूलतः वह मारवाड़ी अग्रवाल "सिघंल"गोत्र परिवार हैं।

कमलापत सिंहानिया आध्यात्मिक, देशभक्ति, देशप्रेम और अनुशासन के वातावरण में पले–बढ़े थे। उन दिनों स्वतन्त्रता सघर्ष में लगे महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तथा मोतीलाल नेहरू की

विचारधारा का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। स्वदेशी, भारतीयता का प्रचार-प्रसार जोरों से हो रहा था। विदेशी वस्त्र की होली जलाई जाती थी। इसलिए कमलापत सिंहानिया ने मिल को बिना किसी विदेशी सहायता के, स्वदेशी प्रबन्धन, भारतीय श्रमिकों और पूँजी से संचालित की। उनके व्यवसायिक उद्यमों में कपास से बना सूत एवं कपड़े, बर्फ, तेल, हौजरी, जूट, चीनी तथा लोहा एवं इस्पात जैसे विभिन्न उत्पादों का निर्माण शामिल है

कमलपत सिंहानिया को आदर-स्वरूप ''लाला जी'' कहकर बुलाया जाता था। वे व्यापार और उद्योग के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक और जनकल्याण के कार्यों में भी रूचि रखते थे। उत्तर-प्रदेश में मर्चेंट्स चैंबर आफ कार्मस की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और वे इसके प्रथम अध्यक्ष थे। जे.के. चैरिटेबल ट्रस्ट समाज सेवा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। कानपुर नगर में जी. टी.रोड (कमना नगर के पास) 15 एकड़ भूमि पर श्री राधा कृष्ण मंदिर का निर्माण करवाया। यह मंदिर पुरातन निर्माण कला का महत्वपूर्ण नमूना है। इसी नगर में शिक्षा का प्रकाश फैलाने के उद्देश्य से 'मारवाड़ी कॉलेज' की स्थापना की।

यह संयोग की बात है कि कमलापत सिंहानिया से पूर्व भारत सरकार ने उनके दो पुत्र पदमपत सिंहानिया के सम्मान में 3 फरवरी 2005 को 5 (पाँच) रूपये मूल्य की 6 छः लाख डाक टिकटें और लक्ष्मीपत सिंहानिया के सम्मान में 15 नवम्बर 2010 को 5 (पाँच) रूपये मूल्य की 13 लाख टिकटें जारी की। इस सिंहानिया परिवार के दूसरे पुत्र लक्ष्मीपत सिंहानिया पर भी डाक टिकट जारी हुई है। 31 मई 1997 को उनका निधन हो गया।



# (49) पूर्ण चन्द्र गुप्त

**भारत सरकार ने श्री पूर्णचन्द्र गुप्त के सम्मान में 02-01-2012 को 5 ( पाँच ) रूपये मूल्य की 3 ( तीन ) लाख डाक टिकट जारी की।**

देश भक्त और क्रान्तिकारियों का भारत देश को विदेशी शासकों से मुक्ति में जितना योगदान है, समाचार पत्रों ने भी विशेष भूमिका निभाई। तब कई समाचार-पत्र हस्त-लिखित प्रकाशित होते और कितने ही व्यक्तियों द्वारा पढ़े जाते थे। श्री पूर्णचन्द्र गुप्त का इसी क्षेत्र में योगदान था। उनका जन्म वर्ष 1912 में उत्तर-प्रदेश राज्य के काल्पी में हुआ। शिक्षा स्थानीय पाठशाला, कानपुर और बनारस में प्राप्त की।

विद्यार्थी जीवन में वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ता है। उन दिनों स्वतन्त्रता आन्दोलन जोरों पर चल रहा था। आपसी समन्वय के लिए समाचार को देना और प्राप्त करना बहुत आवश्यक होता है। शिक्षित युवक पूर्णचन्द्र गुप्त ने इस आवश्यकता की पहचान की और ''स्वतन्त्रता'' शीर्षक से कानपुर नगर से एक साप्ताहिक समाचार-पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया। उन दिनों ब्रिटिश शासकों के नाक में दम कोलकाता, मुम्बई, कानपुर और दिल्ली के आन्दोलनकारियों ने किया हुआ था। इन स्थानों में कोई नये समाचार-पत्र के प्रकाशन का अर्थ था, उनकी समस्या में वृद्धि। श्री पूर्णचन्द्र गुप्त ने परिस्थिति का आंकलन किया और उसका स्थानांतरण झांसी कर दिया। महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने उनको एक दैनिक समाचार-पत्र को शुरू करने के लिए प्रेरित किया। वर्ष 1942 में उन्होंने झांसी नगर से ''दैनिक जागरण'' का प्रकाशन आरम्भ किया। जब वर्ष 1947 में देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई, तब उसका प्रकाशन कानपुर से भी शुरू हो गया।

पत्रकारिता किन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर चलती है। लोकतन्त्र का इसे चौथा स्तम्भ कहा गया है। एक पत्रकार शासक और प्रशासन की प्रत्येक कार्यवाही को बड़ी पैनी नजर से देखता है और उसकी आलोचना बहुत महत्वपूर्ण होती है। श्री पूर्णचन्द्र गुप्त ने सिद्धान्तों से कभी समझौता नहीं किया।

यहि कारण था कि जब देश में आपात-काल लगाया गया तो उनको कारावास जाना पड़ा।

श्री पूर्णचन्द्र गुप्ता को 1974-75 में आडिट ब्यूरो आफ सर्कुलेशन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। वर्ष 1975 में उनको प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया का प्रमुख बनाया गया। वे 15 (पन्द्रह) वर्ष तक इंडियन न्यूज पेपर सोसायटी के कार्यकारी सदस्य बनें रहे और उसके उपाध्यक्ष के रूप में भी सेवा की।

साधारण व्यक्ति उसी समाचर पत्र को पसंद करता है जो उसकी आवाज बनें और उसकी परिस्थिति से सहानूभुति रखता है। ''दैनिक जागरण'' इन मापदडों पर खरा उतरता है और अधिकतर व्यक्तियों की पहली पसंद है और



# (50) श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी

भारत सरकार ने श्री दुर्गा प्रसाद चौधरी के सम्मान में 31 जुलाई 2012 को 5/=(पाँच) रूपये मूल्य की 4 लाख टिकटें जारी की।

श्री दुर्गा प्रसाद चौधरी का जन्म 18 दिसम्बर 1906 को राजस्थान प्रान्त में स्थित नीम का थाना स्थान पर श्री मुरलीधर के घर हुआ। उनको राष्ट्र प्रेम और समाज सुधार की प्रेरणा अपने पिताजी से घुटी के रूप में प्राप्त हुई जो स्वंय खुले विचार और आधुनिकता के समर्थक और प्रचारक थे। इस वातावरण में, श्री चौधरी को विद्यार्थी जीवन में 'देशभक्तों' और क्रान्तिकारियों द्वारा की जा रही कुर्बानी के समाचार मिलते रहते थे। काँग्रेस पार्टी द्वारा महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वराज्य के लिए आन्दोलन जोरों से चल रहा था। युवावस्था में ही दुर्गा प्रसाद जी विदेशी शासन के अत्याचारों के विरूद्ध लड़ाई में शामिल होने के लिए महात्मा की युवाओं से की गई अपील से प्रेरित हुए और उनके समर्पित अनुयायी बन गये।

श्री दुर्गा प्रसाद चौधरी एक सच्चे गांधी वादी थे। उनकी कार्यप्रणाली और जीवन शैली में गाँधी के सर्वगुण देखने को मिलते हैं। प्रश्न उठता है कि श्री चौधरी को ''केप्टन'' के शब्द से उद्‌बोधन और जाना क्यों जाता है? वे कभी किसी सेना में भर्ती नही हुए, न ही किसी अस्त्र-शस्त्र का प्रशिक्षण ही प्राप्त किया। स्वाधीनता का संघर्ष, अनुशासन और संगठन के साथ चले, इसके लिए युवकों को ''कांग्रेस युवा दल'' में लिया जाता था। कैम्प लगाकर किसी युवग की देखरेख में उनको प्रशिक्षण दिया जाता है ऐसे व्यक्ति को 'केप्टन' कहा जाता था। अजमेर में उसी प्रकार का कैम्प आयोजित हुआ और दुर्गाप्रसाद को केप्टन नियुक्त किया गया। बहुत वर्षों तक इसी पद पर रहे और 'केप्टन' के नाम से प्रसिद्ध हो गयें। सविनय अवज्ञा तथा 'भारत छोड़ो' आन्दोलनों में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई। 1930 और 1947 के बीच उनको कई बार जेल हुई। नमक सत्याग्रह का नेतृत्व भी किया।

दुर्गा-प्रसाद चौधरी ने प्रचार-प्रसार के महत्व को स्वंय परखा और अनुभव भी किया। झूठ और बर्गलाने वाले समाचार, कार्यकत्ताओं को बहुत हानि पहुँचा सकते थे। इस कमी को दूर करने के लिए उन्होंने महात्मा गाँधी के

जन्मदिन पर 2 अक्टूबर 1936 को ''दैनिक नवज्योति'' शीर्षक से साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। एक गाँधीवादी कुछ लिखे और उसमें ब्रिटिश शासन के अत्याचारों, लूट और दमन नीति के बारे में नही हो, यह कैसे सम्भव हो सकता है। 1942 के ''भारत छोड़ो'' आन्दोलन ने वैसे ही विदेशी-शासकों की नाक में दम किया हुआ था ''दैनिक नव ज्योति'' में अपने विरूद्ध लिखे गये को वे कैसे सहन कर सकते थे?तब इस समाचार पत्र का प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा। 1945 में इसका प्रकाशन फिर शुरू हुआ और 1948 में यह दैनिक समाचार पत्र हो गया।

श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी की जनसाधारण के बीच एक जनसेवक और उनके हमदर्द के रूप में पहचान बन गई थी। इसलिए 1948 से 1953 तक वे अजमेर नगर पालिका परिषद के सदस्य बनाये गये। श्री चौधरी ने कभी सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। समाचार पत्र के माध्यम से उन्होंने महात्मा गांधी के आदर्शो, जनता के बीच देश प्रेम फैलाया और हिंसा एवं सामुदायिक विद्वेष का विरोध किया। वे अपने लेखन में हमेशा निष्पक्ष, सच्चे और स्पष्ट रहें।

दुर्गाप्रसाद चौधरी ने किसानों के उत्थान के लिए भी उल्लेखनीय कार्य किया। 1982 में स्थापित किसान संघ के सरंक्षक के रूप में, उन्होंने सामाजिक बुराईयों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए अजमेर जिले के 700 गावों में किसान सभाऐं आयोजित की। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अगर देश में भूख, गरीबी, छुआ-छूत व अन्य सामाजिक बुराईयाँ बनी रही तो भारत को मिलि स्वतन्त्रता सार्थक नहीं होगी। इस राजस्थान के लाल का देहावसन 29 जून 1992 को हो गया।



# (51) श्री राम गोपाल माहेश्वरी

**भारत सरकार ने वैश्य समाज के तीन पत्रकार-सपादकों को वर्ष 2010 में डाक टिकट जारी करके सम्मानित किया। श्री राम गोपाल महेश्वरी के अतिरिक्त श्री पूर्णचन्द्र गुप्ता और श्री दुर्गा प्रसाद चौधरी पर 2 जनवरी 2012 और 31 जुलाई 2012 को टिकटे जारी की जिनका जीवन परिचय पूर्व में दिया है**

**श्री रामगोपाल माहेश्वरी पर भारत सरकार ने 5( पाँच ) रूपये मूल्य की 4( चार ) लाख डाक टिकटें 20 नवम्बर 2012 में उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर जारी की।**

श्री रामगोपाल माहेश्वरी का जन्म राजस्थान प्रान्त के जयपुर के नजदीक मंडोलाई गांव में 20 नवम्बर 1911 में हुआ था। उनके विद्यार्थी जीवन में ही देश में हो रही राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव पड़ा। तब स्वतन्त्रता आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहा था। उनके आह्ववान पर वे युवावस्था में ही उसमें भाग लेने लगे। उन पर गांधी जी का प्रभाव इतनी गहराई से पड़ा कि उन्होंने विदेशी वस्त्रों को त्यागकर खादी पहनना आरम्भ कर दिया। उन्हीं दिनों उन्होंने अनुभव किया कि महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाना बहुत आवश्यक है। इसलिए ''माहेश्वरी'' का सम्पादन व प्रकाशन आरम्भ कर दिया। तब उनकी आयु मात्र 22 वर्ष थी। निर्भीकतता, विश्वसनीयता और जनदायित्व एक पत्रकार के गुण होते हैं। इन सभी गुणों से सम्पन्न, रामगोपाल महेश्वरी महाराष्ट्र के अकोला के श्री बृजलाल बियाणी के विश्वास पात्र बन गये। श्री बियाणी जी उस प्रदेश में स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ ''नव राजस्थान'' का प्रकाशन व संपादन कर रहे थे। तब रामगोपाल माहेश्वरी ने इस पत्र का दायित्व सम्भाला।

श्री रामगोपाल माहेश्वरी श्री ब्रजलाल बियाणी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समाज और राष्ट्र सेवा में लगे हुए थे। उस कड़ी में 8 फरवरी 1934 को नागपुर से 'नवभारत' शीर्षक से पाक्षिक समाचार प्रकाशित करना आरम्भ किया। शीघ्र ही वह प्रतिदिन प्रकाशित होने लगा। अपने सिद्धान्तों के कारण इस पत्र की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि उसे अन्य कई शहरों से निकालना पड़ा। जब देश की जनता पर अत्याचार हो रहे हो, स्वाधीनता का दमन हो रहा हो, पत्रिकारिता का पहला कर्तव्य बनता है कि ऐसे कारनामों के विरूद्ध आवाज बुलंद करें।

इसका परिणाम यह हुआ कि 1939 में उनको नजरबंद किया गया। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान, उनको जेलयात्रा करनी पड़ी। उनको नागपुर जेल में रखा गया।

हर व्यक्ति का सामाजिक कार्यों के लिए कोई आदर्श होता है जिसकी कार्य-शैली का अपनाकर कार्य करता जाता है। रामगोपाल माहेश्वरी के लिए ब्रजलाल बियाणी ऐसे ही व्यक्ति थे। श्री बियाणी ने जिस प्रकार रूढ़िवादी, दकियानूसी प्रथा और परम्पराओं का डंट कर मुकाबला किया, श्री महेश्वरी ने भी पर्दा प्रथा तथा मृत्यु भोज के समय की जाने वाली कठोर रस्मों का विरोध किया। वे नारी स्तन्त्रता के कितने प्रबल समर्थक थे इस बात से सिद्ध होता है कि उन्होंने अपनी पत्नी कौशल्या देवी को महिलाओं के उत्थान के कार्यों को करने के लिए न केवल उत्साहित किया बल्कि जहाँ आवश्यकता हुई सक्रियता से सहायता भी की।

श्री रामगोपाल माहेश्वरी को उनके समाज ने वर्ष 1994 में "समाज शिरोमणि" पुरस्कार से सम्मानित किया। पत्रकारिता में श्री माहेश्वरी जी ने धन-दौलत अर्जन का साधन नहीं बनाया वरन् नैतिकता को उन्होंने सर्वोपरि माना। इस सिद्धान्त के लिए उनको पंडित माखनलाल पत्रकारिता विश्व विद्यालय, भोपाल की ओर से 'पत्रकार शिरोमणि' उपाधि से विभूषित किया गया।

श्री रामगोपाल माहेश्वरी का स्वर्गवास 13 सितम्बर 1999 में हो गया।



# (52) डा. दौलत सिंह कोठारी

**भारत सरकार ने डा. दौलत सिंह कोठारी के सम्मान में 6 जुलाई 2011 को 5( पाँच ) रूपये मूल्य की 3( तीन ) लाख डाक टिकट जारी की।**

पद्मविभूषण डा. दौलत सिंह कोठारी का जन्म 6 जुलाई 1906 को राजस्थान प्रान्त के उदयपुर नगर में श्री फतेह लाल कोठारी के घराने में हुआ जो एक विद्यालय में अध्यापक के पद पर नियुक्त थे। दुर्भाग्य से उनका निधन सन् 1918 में हो गया जब उनके पुत्र की आयु केवल 12 वर्ष थी। अब दौलत सिंह के लालन पालन और शिक्षा का दायित्व उनकी माता ने सम्भाला।

डा. दौलत सिंह कोठारी की प्रारम्भिक शिक्षा उदयपुर में ही हुई। उन दिनों दस वर्ष की शिक्षा को मैट्रिक कहा जाता था इसके लिए मध्यप्रदेश के नगर इन्दौर में जाना पड़ा। मैट्रिक के बाद तब इंटर की जाती थी। इसे उन्होंने अपने गृहनगर उदयपुर से की। श्री दौलत सिंह शिक्षा में उच्चकोटि का प्रतिभाशाली युवक था। जब उनका उत्कृष्ट परिणाम घोषित हुआ तो मेवाड़ के महाराणा ने खुश होकर उन्हें 50/=(पचास) रूपये प्रतिमाह की छात्रवृति प्रदान की। उन दिनों में शिक्षा के क्षेत्र में इतनी प्रगति नहीं हुई थी अधिकतर युवक लिखना-पढ़ना और हिसाब के लिए जोड़-तोड़ को सिखकर अपने व्यवसाय में लग जाया करते थे। मैट्रिक शिक्षा वाले युवक बहुत कम होते थे। दौलत सिंह कोठारी उस स्थापित ढर्रे से हटकर के विज्ञान विषयों के साथ शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ते जा रहे थे। अपने समय के प्रख्यात भौतिक वैज्ञानिक मेघनाद साहा जो उन दिनों में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य कर रहे थे, उनके मार्गदर्शन में बी.एस.सी. की उपाधि के बाद सन् 1928 ईस्वी में वायरलैस विशेषज्ञता (अब नया नाम इलेकट्रोनिक) से एम.एस.सी. की उपाधि प्राप्त की। उन दिनों इस क्षेत्र में भरपूर और अनेक सम्भावनायें थी।

ज्ञान-पिपासा की कोई सीमा नहीं होती। ऐसा व्यक्ति किसी भौतिक सुख और विलासिता की कभी सोचता भी नहीं। श्री कोठारी की यद्यपि इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही "प्रदर्शक" (Demonstrator) के पद पर नियुक्ति हो गई थी, परन्तु उनको सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ। वे उस पद पर केवल दो वर्ष रहे। संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) की छात्रवृत्ति और मेवाड़ राज्य सरकार (अब

राजस्थान) से प्राप्त ब्याज-मुक्त ऋण से उच्च शिक्षा के लिए वे इंग्लैंड चले गये।

जब शिक्षा पूरी हो गई तो वे स्वदेश लौट आये। मई 1934 में कोठारी ने रीडर और भौतिक विज्ञान के अध्यक्ष के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्यभार सम्भाला। आज दिल्ली विश्वविद्यालय देश के अन्य विश्वविद्यालयों में अग्रणी माना जाता है। इसका प्रमुख कारण श्री दौलत सिंह कोठारी जैसे प्रतिभाशाली और दूरदर्शी व्यक्ति द्वारा मजबूत नींव रखना है। उन्होंने बहुत से परिवर्तन किये। उन्होंने प्रयोगशालाओं पुस्तकालयों की स्थापना की और व्याख्यान देने के लिए प्रख्यात भौतिक वैज्ञानिकों को आमान्त्रित किया। भौतिक विज्ञान में अनुसंधान के लिए एक सक्रिय अनुंसधान दल की स्थापना की तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.एस.सी. पाठ्यक्रम आरम्भ किया।

डा. कोठारी के अनवरत सुधार और विकास कार्यों से उनको शिक्षा क्षेत्र में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उनके अनेक शोध पत्रों की चर्चाऐं होने लगी। उनको 1948 में रक्षा मंत्रालय के लिए सलाहाकार नियुक्त किया गया। उस काल में रक्षा विज्ञान संगठन के तत्वाधान में कई प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई। वर्ष 1961 के बाद उनको विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G..C.) का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उनको शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए राष्ट्रीय शिक्षा अनुंसधान एवं प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.) के साथ सम्बिधित किया।

डा. कोठारी ने भारत संरकार की केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षा और चयन प्रक्रिया के पुनर्गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिभा खोज कार्यक्रम तथा परवर्ती राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिभा खोज कार्यक्रम उनकी ही विचार दृष्टि की देन है। वे दो कार्यकाल जवाहर लाल विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष तथा 1962 में भारतीय विज्ञान काँग्रेस के महाअध्यक्ष भी रहे। 1974 में उन्हें संघ लोक सेवा आयोग की भर्ती नीति व चयन प्रणाली सम्बन्धी समिति के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया।

विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में उनके कार्यों के लिए विभिन्न सामाजिक और सरकारी प्रतिष्ठानों ने उनको सम्मान और पुरस्कार प्रदान किये। उन सम्मान और पुरस्कारों के अतिरिक्त 1962 में उन्हें पद्म भूषण और 1975 में पद्म विभूषण से अलंकृत किया गया।

4 फरवरी 1993 को उनका स्वर्गवास हुआ।



# (53) आदित्य विक्रम बिड़ला

**भारत सरकार ने श्री आदित्य विक्रम बिड़ला के सम्मान में 14 जनवरी 2013 को 5 ( पाँच ) रूपये मूल्य की 3,10,000 ( तीन लाख दस हजार ) टिकटें जारी की।**

एक मामूली व्यवसायी से उद्योगपति बने श्री घनश्यामदास बिड़ला के पौत्र आदित्य विक्रम बिड़ला का जन्म 14 नवम्बर 1943 को देश की राजधानी दिल्ली में हुआ था। उनके पिता जी का नाम वसंत कुमार बिड़ला था उनके में परिवार राजस्थान से प्लायन करने के पश्चात् कोलकाता में स्थाई रूप से रहना आरम्भ किया। सेठ घनश्यमदास बिड़ला सर्वप्रथम ऊंट की सवारी करके बहुत दिनों के पश्चात मुम्बई पहुँचे थे।

आदित्य विक्रम की प्रारम्भिक शिक्षा कोलकात्ता में हुई। स्नातक की डिग्री भी वही से प्राप्त करने के पश्चात् आगे की शिक्षा अमेरिका से प्राप्त की। उन्होंने कैमिकल इंजिनियरिंग की डिग्री मसेच्युसेटस इंस्टीटयूट आफ टैक्नोलोजी (M.I.T.) से हासिल की। भारत देश लौट आने के पश्चात् उनका विवाह राजश्री से हुआ।

बिड़ला औद्योगिक घराने की स्थापित करने वाले उनके पितामह घनश्याम बिड़ला थे। उनको आरम्भ में उद्योग के क्षेत्र में आने में ब्रिटिश साम्राज्य के लूटेरे व्यापारियों, व्यवसायिओं और उद्योगपतियों से कड़ा सघंर्ष करना पड़ा। वे नहीं चाहते थे कि उनके एकाधिकार में कोई हिस्सेदार बने। उस विरासत को सम्भालने के लिए एक दूरदर्शी और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति की आवश्यकता थी। 1983 में उनके दादा की मृत्यु हो गई। उस खालीपन को पूरा करने के लिए आदित्य-बिड़ला ने पदार्पण किया। हिन्दुस्तान गैस, हिंडालको, ग्रासिम, इंडियन रेयन तथा 'इंडो ग्रल्फ फर्टिलाइर्जस एण्ड केमिकल्स लिमिटड' उद्योग अपने पूरे सबाब पर कार्य कर रहे थे। उनको चलाए रखना और उनके विकास और प्रगति के लिए काम करना उनके लिए एक चैलेंज था जिनको उन्होंने कठिन परिश्रम और बुद्धिमानी से संचालन करने में सफल हुए।

अपने समय के उद्योगपतियों की भाँति उन्होंने उद्योंगों को स्वदेश में ही सीमित नहीं रखा। उन्होंने थाइलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया, फिलिपिंस एवं मिश्र जैसे देशों में उद्योगिकरण के उद्देश्य से 19 कम्पनियाँ स्थापित की। उन देशों में

कपड़ा उद्योग, विस्कोस स्टेपल फाइनर, कार्बन ब्लैक, रसायन तथा पैट्रो परिशोधन जैसे अपनी शिक्षा और कुशलता से नये–नये उत्पाद किये।

आदित्य बिड़ला जहाँ उद्योगों में अग्रणी रहें, वहीं धार्मिक, सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में महत्वपूर्ण कार्य किये। बिड़ला मंदिरों का देश के कई भागों में निर्माण करवाया। समाज के कमजोर, दलित और शोषित वर्ग की सहायता के लिए भी कार्य किये। उनके जीवन में परिवर्तन लाने के लिए अपनी कम्पनी को गावों को गोद लेने का क्रम आरम्भ किया। ऐसे गावों में आधारभूत परिवर्तन लाने का प्रयास किया, ताकि स्वरोगजगार की सुविधा, कृषि के आधुनिक औजार और बीज आदि उपलब्ध करा कर उनके जीवन में विकास और प्रगति का प्रकाश फैलाया।

आदित्य विक्रम बिड़ला की क्रान्तिकारी और आधुनिक सोच और क्रियान्वयन का सभी ने स्वागत किया। इसके लिए उनको विभिन्न संस्थाओं ने सम्मानित किया। उद्योग में अग्रणी थे तो उनको फिक्की (Ficci), एशियन इन्सटिच्यूट आफ मैनेजमेंट मनीला तथा इंडिया फंड जैसे निकायों का सदस्य बनाया गया। उनके अनुकरणीय नेतृत्व और वैश्विक दृष्टिकोण के कारण उनको भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशक मंडल में नामित किया गया। फिलिपिन्स गणराज्य में आनरेरी काउंसिल जनरल बनाया गया और भारत के प्रधानमन्त्री के आर्थिक परिषद् में परामर्श दाता के रूप में आमन्त्रित भी किया गया। वे चित्रकला, संगीत तथा बैडमिंटन में व्यक्तिगत रूचि के लिए भी माने जाते थे।

श्री आदित्य विक्रम का 1 अक्टूबर 1995 को निधन हो गया।



# (54) बाबू बनारसी दास

**भारत सरकार ने बाबू बनारसी दास के सम्मान में 31 दिसम्बर 2013 को 5 (पांच) रू. मूल्य की 4,10,000 (चार लाख दस हजार) डाक टिकटें जारी की।**

''बनारसीदास'' नाम से वैश्य समाज की दो अलग विभूतियों ने देश सेवा में अपना सारा जीवन समर्पित किया, जिनकी कर्मभूमि देश के विभिन्न दो प्रदेश थे। उत्तर प्रदेश से बनारसीदास को ''बाबूजी'' शब्द से जाना जाता था। उनका जन्म 8 जुलाई 1912 को जिला बुलन्दशहर के उत्तरावली गाँव में हुआ था। अन्य बनारसी दास हरियाणा राज्य से थे जो अपने नाम के साथ 'गुप्त' शब्द का प्रयोग करते थे।

31 दिसम्बर 2013 को भारत सरकार ने उत्तर प्रदेश वाले बाबू बनारसी दास पर डाक टिकटें जारी की थी। बाबूजी एक कर्मठ काँग्रेसी नेता और गांधीवादी थे। जब उन्होंने होश सम्भाला, देश की स्वतन्त्रता का आन्दोलन महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चल रहा था जिस आयु में शिक्षा प्राप्ति और युवावस्था के आनन्द के वर्ष थे, बाबू जी स्वयँ को उसमें भाग लेने से रोक नहीं पायें। फलस्वरूप वे स्कूल, कालेज आदि से औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। परन्तु उनमें प्रतिभा और सीखने की लग्न बहुत थी, जिससे उनको कई भाषाओं जैसे संस्कृत, उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी का पूरा ज्ञान हो गया था। स्वतंन्त्रता संघर्ष करन तब कोई आसान कार्य नहीं होता था। ब्रिटिश सरकार ऐसे युवकों को जेल में डाल देती और नाना प्रकार से यातनाएं देती थी। बाबू जी को भी कई बार जेल जाना पड़ा।

वर्ष 1947 में भारत देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। उन्हें उनकी सेवा को देखते हुए उत्तर प्रदेश विधान सभा के लिए निर्विरोध चुना गया। कई बार विधान सभा के लिए चुने गये और मन्त्री के रूप में जनसेवा की। वे विधान सभा के अध्यक्ष और मुख्य मन्त्री भी बनें। उत्तर प्रदेश देश के अन्य प्रदेश की तुलना में अधिक गरीब था। उससे निदान पाने के लिए बाबूजी को सहकारिता का रास्ता उचित लगा और तत्परता से कार्य किया। 1965 में सहकारिता अधिनियम लागू किया। इसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए। अनेक सहकारी समितियों के गठन में उनका स्वयं का सहयोग रहा। वर्ष 1972 में वे राज्य सभा के लिए चुने गये। बाद में उन्होंने लोक सभा में बुलन्दशहर का प्रतिनिधित्व भी किया।

बाबू बनारसी दास महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा को आवश्यक मानते थे। उनके प्रयासों से केवल बुलन्दशहर में ही 150 से अधिक स्कूल खोले गये। उनका स्वर्गवास 3 अगस्त 1985 को हुआ।

# (55) ला.हरदयाल

**भारत सरकार के डाक विभाग ने ला.हरदयाल के सम्मान में 18-03-1987 को षडिचरी ( अब पुद्दीचरी ) में डाक टिकट जारी की।**

ला.हरदयाल का जन्म 14 अक्टूबर 1884 को दिल्ली नगर के चीरखाने मोहल्ले में ला गौरी दयाल के घर हुआ था उनकी माताजी का नाम भोला रानी था। 4 (चार) वर्ष की आयु में कैम्ब्रिज मिशन स्कूल में प्रवेश लिया। यह बालक विलक्षण प्रतिभा और स्मरण शक्ति वाला था। वह एक बार पाठ पढ़ने के बाद आयुभर याद रखने की क्षमता रखता था सेन्ट-स्टीफन कालेज से शिक्षा के बाद गवर्नमेन्ट कालेज, लाहौर से 92% अंक प्राप्त कर एम. ए. पास करके विश्वविद्यालय में रिकार्ड बनाया। तत्कालीन सरकार ने 'स्टेट स्कालरशिप' प्रदान की तो इंग्लैंड जाकर सेन्ट जान कालेज में सत्र समाप्त होने के बावजूद प्रवेश प्राप्त किया। "बोधित्व डाकट्रिन' पर डाकट्रेट की उपाधि प्राप्त की। इंग्लैंड में उनकी श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर और भाई परमानन्द से मुलाकत हुई। इससे उनके जीवन दर्शन में आधारभूत परिवर्तन हो गया। सन् 1908 में ला.हरदयाल भारत आये। परिवार, पत्नी सुन्दरानी और पुत्री शान्ति से सम्बन्ध विच्छेद करके सन्यासी की तरह लाहौर में रहना आरम्भ किया। ला. लाजपतराय के आदेशानुसार 'पंजाबी दैनिक ' पत्र का सम्पादन करने का दायित्व ग्रहण किया। इसमें लेख क्रान्तिकारी विचारों से भरे हुए होते थे। जिससे ब्रिटिश सरकार भयभीत थी और उसको काला पानी (अंडमान) भेजने का निश्चय कर लिया था

देश में सजा से बचने के लिए, ला. हरदयाल इंग्लैंड चले गये। वहाँ राजनैतिक कार्यो में निराश देखकर, वे पेरिस (फ्रांस) चले गये।

बाद में अन्जीमीया से अमेरिका चले गये। यहाँ "गदर पार्टी" की स्थापना की। "युगान्तर आश्रम" नाम से प्रेस लगाकर एक नवम्बर 1913 को "गदर" नामक पत्र निकालना आरम्भ किया। वे स्थान-स्थान पर भाषण भी देते थे। 'गदर' केवल पत्र नहीं, एक प्रकार से 'बम' सिद्ध हुआ। इसकी प्रतियाँ अन्य देशों में भी पहुँचती थी। ब्रिटिश सरकार बुरी तरह घबरा गई थी। उसने अमेरिका की सरकार पर दबाव डाला कि यह हरदयाल को उन्हें सुपुर्द कर दें। 23 मार्च 1914 की रात को उन्होने जैसे ही एक सभा में अपना भाषण समाप्त किया, अप्रवास इंसपेक्टर ने गिरफ्तारी का वारंट पेश किया और उसको गिरफ्तार किया।



परन्तु वहाँ के भारतीयों ने जल्दी ही 500 (पाँच सौ) डालर की जमानत देकर उनको छुड़ा लिया।

उन्ही दिनों "प्रथम विश्व महायुद्ध" चल रहा था। इसने विश्व के सभी देशों में शासकों और वहाँ पर हो रही राजनीति को प्रभावित किया। क्योंकि फ्रान्स ब्रिटेन के साथ था, अब वहाँ पर सुरक्षित रहना कठिन था। तब ला.हरदयाल को जर्मनी आना पड़ा। यहाँ पर ला.हरदयाल की मैडम कामा से भेंट हुई। उसने लाला जी की प्रतिभा को जाना और 1909 में 'वन्दोमातरम्' पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया।

इस पत्र के मुख पृष्ट पर दो चित्र होते थे। एक पर भारत के राष्ट्रीय ध्वज और दूसरे पर भारत माता का, जो म्यान से तलवार निकाल रही है। सन् 1913 में लाला जी ने 'युगान्तर सिर्कुलर' नामक पुस्तक श्याम जी वर्मा के पास प्रकाशन के लिए भेजी। वर्मा ने उसे प्रकाशित करवाकर विश्व के अनेक देशों में भेजा योरूप और अमेरिका में भारतीय क्रान्ति के जो प्रयास चल रहे थे, ला.हरदयाल उसके प्रमुख नेता थे। परन्तु वे जर्मनी की विश्व महायुद्ध में पराजय के कारण सफल नही हो पाये। 1926 में अंग्रेज सरकार ने राजनीतिक शरणर्थियों के लिए आमक्षमा योजना घोषित कर दी। 27 अक्टूबर 1927 को ला.हरदयाल जी लंदन पहुँचे। यहाँ उन्होने "युगान्तर सर्कुलर" के बाद "बोधिसत्त्व सिद्धान्त पर शोध लिखा, जिस पर लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें पी. एच. डी. डिग्री प्रदान की। हिन्टस फोर सेल्फ कल्चर और "टूवेल्व" उनके महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिनकी बहुत प्रशंसा हुई। भारत विरोधी चर्चिल ने भी लालाजी के पंडित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

ला.हरदयाल प्रतिभा सम्पन्न विद्धान, महान क्रान्तिकारी, मानवतावादी, समाज सुधारक, निर्भीक पत्रकार लेखक, वैचारिक व बौद्धिक दृष्टि से अत्याधिक विकसित राष्ट्रवादी नेता थे। उन्होने अपनी अद्भूत संगठन शक्ति के बल पर कनाडा और अमेरिका के प्रवासी भारतीय मजदूरों व छात्रों की गदर पार्टी बनाई, जिसने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम विशेषत: क्रान्तिकारी आन्दोलन को नई शक्ति और नया आयाम दिया। ला.हरदयाल जी स्वीडन में ही रहे। 3 मार्च 1939 को उनकी मृत्यु का समाचार दिल्ली के एक दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ, तभी से उनकी सक्रियता समाप्त हुई मानी गई।

# (56) हरख चन्द नाहटा

**भारत सरकार के डाक विभाग ने श्री हरख चन्द नाहटा के सम्मान में 5 ( पाँच ) रूपये मुल्ये की डाक टिकटें 28 फरवरी 2009 को जारी की। जिसको मुम्बई नगर ( महाराष्ट्र प्रान्त ) में स्थित राजभवन में एक समारोह में महामहिम राजपाल एस.सी. जमीर के कर कमलों से सम्पन्न करवाया गया।**

श्री हरख चन्द नाहटा का जन्म 18 जुलाई 1936 को राजस्थान प्रान्त के बिकानेर नगर के विख्यात परिवार में हुआ। परिवार को उनके चाचा अगर चन्द नाहटा द्वारा किये गये सामाजिक कार्यो से जाना जाता था। वे जैन धर्म के अनुयायी थे। हरख रांय नाहटा के बड़े सहोदर भवरलाल प्राकृत साहित्य और जैन साहित्य के पारंगत विद्वान् थे। उनके घर में 85 (पिचासी) हजार पुस्तकों और पांडुलिपियों का संग्रह उपलब्ध था

श्री नाइटा के परिवार का व्यापार देश के बहुत सारे नगरों- जैसे आसाम, मेघालय, पश्चिमी बंगाल, कोलकता, त्रीपुरा और पूर्वी बंगाल जो अब बंगालदेश है, फैला हुआ था। हरखराय नाहटा ने आरम्भिक शिक्षा बिकानेर में प्राप्त की। उच्च शिक्षा के लिए कोलकाता नगर में आ गये जहाँ शिक्षा के साथ व्यापार में भी रूचि लेने लगे।

हरख चन्द नाहटा ने युवावस्था में ही स्वतन्त्र रूप से व्यापार करना आरम्भ किया। वे ही पहले व्यक्ति थे जिन्होने त्रीपुरा के कठिन, दुर्गम और टेढे-मेढे रास्तों में यातायात का कार्य आरम्भ किया था। उन्होने रेलवे से त्रीपुरा के लिए माल दुलाई के लिए ऐजेन्सी प्राप्त की, जिसके लिए उनको वाहनों का बड़ा नेटवर्क स्थापित करना पड़ा। इस कार्य से त्रीपुरा को आर्थिक प्रगति और विकास को गति मिली जिससे प्रदेश में रहने वाले निवासियों और आदिवासियों में खुशहाली हुई।

हरख चन्द नाहटा ने कोलकाता नगर में "काली-स्टुडियों" स्थापित किया जिसको बाद में टेकनिशियन स्टुडियों के नाम से जाना गया। इस स्टुडियो से देश के विख्यात फिल्म निर्माता जैसे सत्यजीत रे, बसु भटट्राचार्य आदि जुड़े थे। इससे पूर्वी भारत में सिनेमा के क्षेत्र में विकास हुआ। उन्होने बहुत से कलाकारों को अपने सुझाव, सहयोग और सहायता से उच्च कोटी के आयाम तक पहुँचाया। वे कितने ही लेखकों को आगे लाये। उनके द्वारा लिखे साहित्य का प्रकाशन करवाया।



हरख चन्द नाहटा, न केवल एक सफल व्यापारी थे वरन् उनको एक उदार समाज सेवी और दान दाता के रूप में भी जाना जाता है। वे 60 (साठ) से अधिक सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं से सम्बन्ध रखते थे जिनमें "हर्ट केयर फाउन्डेशन आफ इंडिया" "शान्ति मंदिर-विदहरी" "प्राकृतिक भारती" "रिषभ फाउंडेशन" "वीरायतन", राजस्थान भारती, "श्री अम्बिका निकेतन ट्रस्ट" "अहिंसा इन्टरनेशनल", श्री जैन महासभा, भारत जैन महामंडल, विश्व जैन परिषद् प्रमुख है।

समाज और धर्म के काम करने वाले व्यक्ति बहुत कम होते है। इन कार्यो में समय और धन का प्रयोग होता है। जिसको देना बहुत कठिन होता है। इस सच्चाई को सभी जानते है। हरखराय नाहटा के कार्यो को देखते हुए उपराष्ट्रपति और दिल्ली के उपराज्यपाल ने उनको सम्मानित किया। दिल्ली में ही एक सड़क का नाम "हरख चन्द नाहट मार्ग" रखा गया जिसका उद्घाटन 1 मार्च 2007 को कुश्ती पहलवान, सीने-कलाकार और सांसद श्री दारासिंह द्वारा किया गया। इनका स्वर्गवास 21 फरवरी 1999 को हुआ।

# डाक टिकट

## अग्रवाल वैश्य समाज की महान विभूतियां

### जिनके सम्मान में भारत सरकार द्वारा समय-समय पर डाक टिकट जारी किए गए

| क्र.सं. | विभूतियां | जन्म | अवसान | कीमत | टिकट जारी करने की तिथि | प्रसारित संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | राष्ट्रपति महात्मा गांधी | 2.10.1869 | 30.1.1948 | 1 1/2 आना<br>3 1/2 आना<br>12 आना व 10/- रु. | 15.8.1948 | सर्वप्रथम जारी क्रिया और अभी तक निरंतर प्रकाशित हो रही हैं |
| 2. | बा कस्तूरबा गांधी | अप्रैल 1869 | 22.2.1944 | - / 15 पैसे | 22.2.1964 | 20,00,000 |
| 3. | लाला लाजपत राय | 2.10.1865 | 17.11.1928 | - / 15 पैसे | 28.1.1965 | 20,00,000 |
| 4. | डॉ भगवान दास | 12.1.1869 | 18.9.1958 | - / 20 पैसे | 20.1.1969 | 30,00,000 |
| 5. | सेठ जमनालाल बजाज | 4.11.1889 | 11.2.1942 | - / 20 पैसे | 4.11.1970 | 30,00,000 |
| 6. | राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त | 3.8.1886 | 8.1.1964 | - / 25 पैसे | 3.7.1974 | 30,00,000 |
| 7. | भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र | 9.9.1850 | 5.1.1885 | - / 25 पैसे | 9.9.1976 | 30,00,000 |
| 8. | महाराजा अग्रसेन | आश्विन शुक्ल एकम प्रथम नवरात्र | | - / 1 रु. | 23.3.1997 | 4,00,000 |



| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 9. | सर गंगाराम | 13.4.1851 | 10.7.1967 | - / 1 रु. | 23.3.1997 | 4,00,000 |
| 10. | डॉ. राममनोहर लोहिया | 23.3.1910 | 12.10.1967 | - / 1 रु. | 23.3.1997 | 4,00,000 |
| 11. | डॉ. काशी प्रसाद जायवसाल | 27.11.1881 | 4.8.1937 | - / 35 पैसे | 1981 | 20,00,000 |
| 12. | सेठ घनश्याम दास बिड़ला | 14.4.1894 | 11.6.1983 | - / 50 पैसे | 11.6.1984 | 20,00,000 |
| 13. | डॉराजासरएम.ए. मुत्तैयाचेट्टियार | 5.8.1905 | 12.5.1984 | -/60पैसे | 21.12.1987 | 10,00,000 |
| 14. | मोहन लाल सुखड़िया | 31.7.1916 | 2.2.1982 | - / 60 पैसे | 2.2.1988 | 10,00,000 |
| 15. | राष्ट्र रत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त | 18.6.1883 | 16.4.1944 | - / 60 पैसे | 26.6.1988 | 10,00,000 |
| 16. | श्री प्रकाश | 3.8.1890 | 23.6.1971 | 2 रुपये | 3.8.1991 | 6,00,000 |
| 17. | जय शंकर प्रसाद | 31.1.1890 | 14.10.1937 | 2 रुपये | 16.9.1991 | 6,00,000 |
| 18. | हनुमान प्रसाद पोद्दार | 17.12.1892 | 22.3.1971 | 1 रुपया | 10.9.1992 | 6,00,000 |
| 19. | श्यामलाल गुप्त | 16.9.1896 | 10.8.1977 | 1 रुपया | 4.3.1997 | 4,00,000 |
| 20. | संत कवि सुन्दर दास | 1596 | 1689 | 2 रुपये | 8.11.1997 | 4,00,000 |
| 21. | डॉ जगदीश चन्द्र जैन | 1909 | | 2 रुपये | 28.1.1998 | 4,00,000 |
| 22. | आचार्य तुलसी | 20.10.1914 | 23.6.1997 | 3 रुपये | 20.10.1998 | 14,00,000 |
| 23. | पोट्टी श्रीरामुलु | 1901 | 1952 | 3 रुपये | 16.3.2000 | 4,00,000 |
| 24. | डी एन जटिया | 1930 | 2000 | 15 रुपये | 11.12.2000 | 50,000 |
| 25. | भामाशाह | 28.6.1547 | 11.1.1600 | 3 रुपये | 31.12.2000 | 4,00,000 |
| 26. | चन्द गुप्त मौर्य | 324 ईसा-पूर्व | | 4 रुपये | 21.7.2001 | 4,00,000 |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 27. | बृजलाल बियाणी | 6.12.1895 | 27.9.1968 | 4 रुपये | 22.6.2002 | 4,00,000 |
| 28. | बाबू गुलाबराय | 17.1.1888 | 13.4.1963 | 5 रुपये | 22.6.2002 | 4,00,000 |
| 29. | आनन्द ऋषिजी | 25.7.1900 | 28.3.1992 | 4 रुपये | 9.8.2002 | 4,00,000 |
| 30. | नरेन्द्र मोहन | 10.10.1934 | 28.9.2002 | 5 रुपये | 14.10.2003 | 4,00,000 |
| 31. | डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री | 27.5.1912 | 3.11.1986 | 5 रुपये | 27.5.2004 | 4,00,000 |
| 32. | ज्योती प्रसाद अगरवाला | 17.6.1903 | 17.1.1951 | 5 रुपये | 17.6.2004 | 4,00,000 |
| 33. | आचार्य भिक्षु | सन् 1726 | सन् 1803 | 5 रुपये | 30.6.2004 | 4,00,000 |
| 34. | वालचंद हिराचंद | 23.11.1882 | 8.4.1953 | 5 रुपये | 23.11.2004 | 7,00,000 |
| 35. | पद्मपत सिंहानिया | 3.2.1905 | 18.11.1979 | 5 रुपये | 3.2.2005 | 6,00,000 |
| 36. | ए.एम.एम. मुरुगप्पा चेट्टियार | 22.1.1902 | 1965 | 5 रुपये | 1.10.2005 | 6,00,000 |
| 37. | जवाहर लाल दर्डा | 2.7.1923 | 25.11.1997 | 5 रुपये | 2.12.2005 | 6,00,000 |
| 38. | लाल दीनदयाल | 1844 | 5.7.1905 | 5 रुपये | 11.11.2006 | 4,00,000 |
| 39. | डॉ. आर.एम. अलगप्प चेट्टियार | 6.4.1909 | 5.4.1957 | 5 रुपये | 6.4.2007 | 4,00,000 |
| 40. | डा. लक्ष्मी मल सिंघवी | 09.11.1931 | 6.10.2007 | 5 रुपये | 8.12.2008 | 5,00,000 |
| 41. | श्री कृष्ण कुमार बिड़ला | 11.11.1918 | 30.08.2008 | 5 रुपये | 13.03.2009 | 8,00,000 |
| 42. | श्री रामचरण अग्रवाल | 02.12.1917 | 25.07.1977 | 5 रुपये | 25.07.2009 | 4,00,000 |
| 43. | श्रीमति दिनेश-नंदिनी-डालमिया | 16.2.1928 | | 5 रुपये | 11.10.2009 | 5,00,000 |
| 44. | श्री गौरी शंकर डालमिया | 12.11.1910 | 16.8.1988 | 5 रुपये | 12.11.2009 | 5,00,000 |



| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 45. | वीर चन्द राघव जी गाँधी | 25.08.1864 | 07.08.1901 | 5 रुपये | 8.11.2009 | 5,00,000 |
| 46. | देश बन्धु गुप्ता | 14.06.1901 | 21.11.1951 | 5 रुपये | 14.06.2010 | 5,00,000 |
| 47. | श्री लक्ष्मीपत सिंहानिया | 23.11.1910 | 13.11.1976 | 5 रुपये | 15.11.2010 | 13,00,000 |
| 48. | श्री कमलापत सिंहानिया | 07.11.1884 | 31.05.1997 | 5 रुपये | 01.02.2010 | 4,00,000 |
| 49. | श्री पूर्णचन्द गुप्त | सन् 1912 | | 5 रुपये | 02.01.2015 | 3,00,000 |
| 50. | श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी | 18.12.1906 | 29.06.1992 | 5 रुपये | 31.07.2012 | 4,00,000 |
| 51. | श्री रामगोपाल महेश्वरी | 20.11.1911 | 13.09.1999 | 5 रुपये | 20.11.2012 | 4,00,000 |
| 52. | डा. दौलत सिंह कोठरी | 06.07.1906 | 04.02.1993 | 5 रुपये | 06.07.2011 | 3,00,000 |
| 53. | श्री आदित्य विक्रम बिडला | 14.11.1943 | 01.10.1995 | 5 रुपये | 14.01.2013 | 3,10,000 |
| 54. | श्री बाबू बनारसी दास | 08.07.1912 | 03.08.1985 | 5 रुपये | 31.12.2013 | 4,10,000 |
| 55. | श्री ला. हरदयाल | 14.10.1884 | 03.03.1939 | 5 रुपये | 18.03.1987 | |
| 56. | श्री हरख चन्द नाहटा | 18.07.1936 | 21.02.1999 | 5 रुपये | 28.02.2009 | |

# डाक टिकटों के चित्र

## जो भारत सरकार ने वैश्य विभूतियों के सम्मान में जारी किये

भारत INDIA
5.00



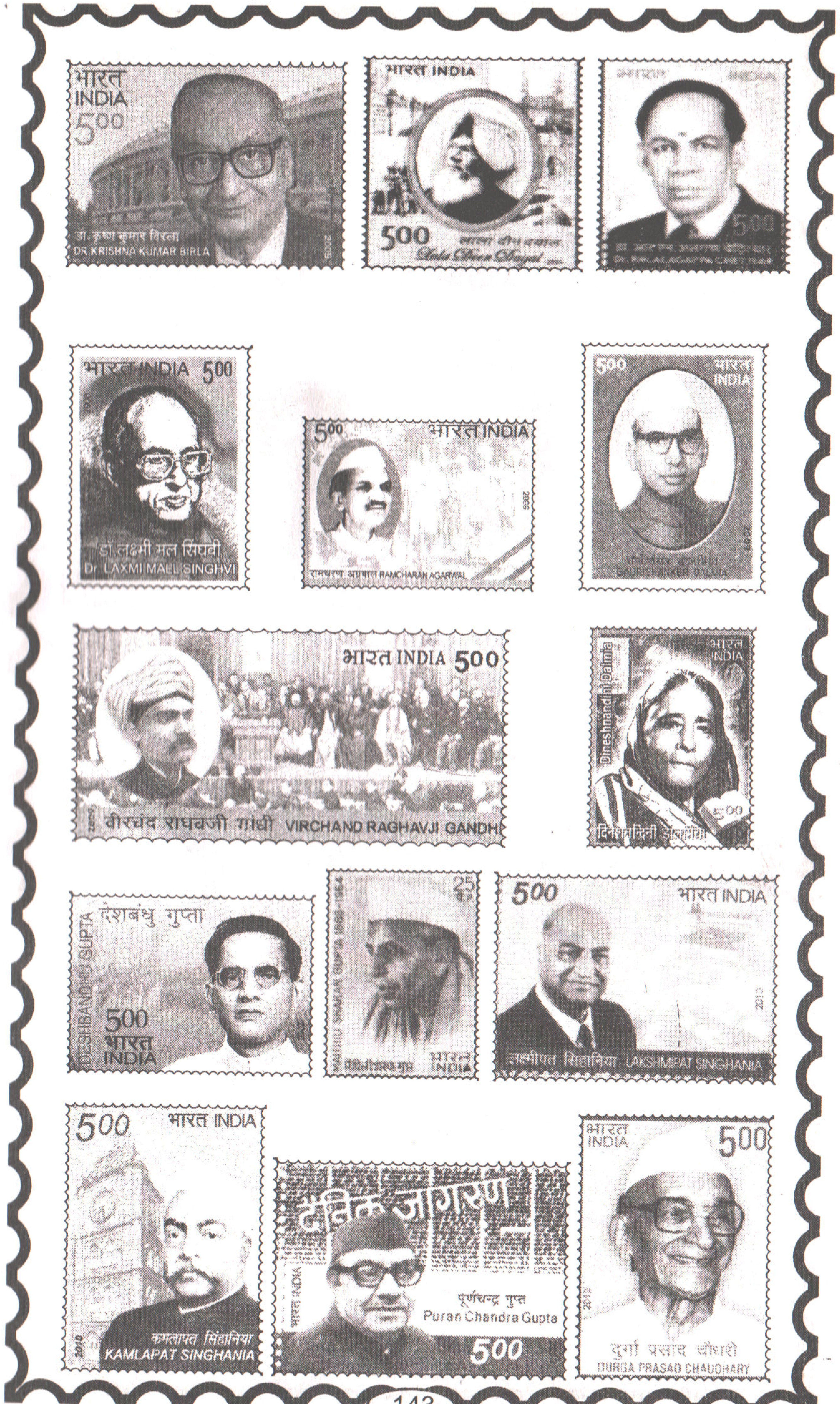
डा. कृष्ण कुमार बिरला
DR. KRISHNA KUMAR BIRLA
डॉ. लक्ष्मी मल सिंघवी
Dr LAXMI MALL SINGHVI
वीरचंद राघवजी गांधी VIRCHAND RAGHAVJI GANDHI
देशबंधु गुप्ता
DESHBANDHU GUPTA
लक्ष्मीपत सिंहानिया LAKSHMIPAT SINGHANIA
कमलापत सिंहानिया
KAMLAPAT SINGHANIA
पूर्णचन्द्र गुप्त
Puran Chandra Gupta
दुर्गा प्रसाद चौधरी
DURGA PRASAD CHAUDHARY

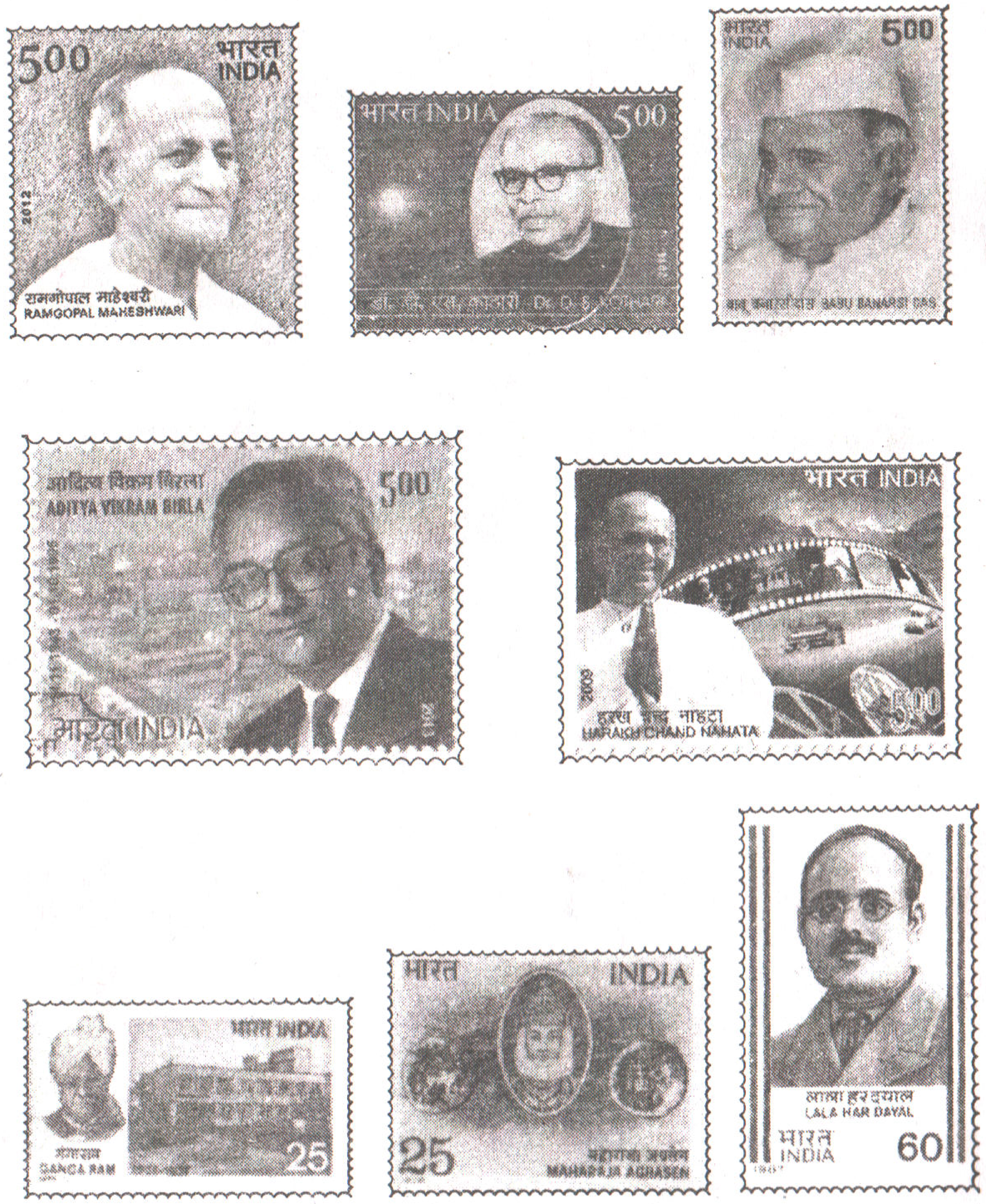
5.00
भारत INDIA
2012
रामगोपाल माहेश्वरी
RAMGOPAL MAHESHWARI
भारत INDIA 5.00
भारत INDIA 5.00
बाबू बनारसी दास BABU BANARSI DAS
आदित्य विक्रम बिरला
ADITYA VIKRAM BIRLA
5.00
भारत INDIA
भारत INDIA
2009
HARAKH CHAND NAHATA
5.00
भारत INDIA
25
भारत INDIA
25
MAHARAJA AGRASEN
लाला हर दयाल
LALA HAR DAYAL
भारत INDIA 60

## लेखक का परिचय

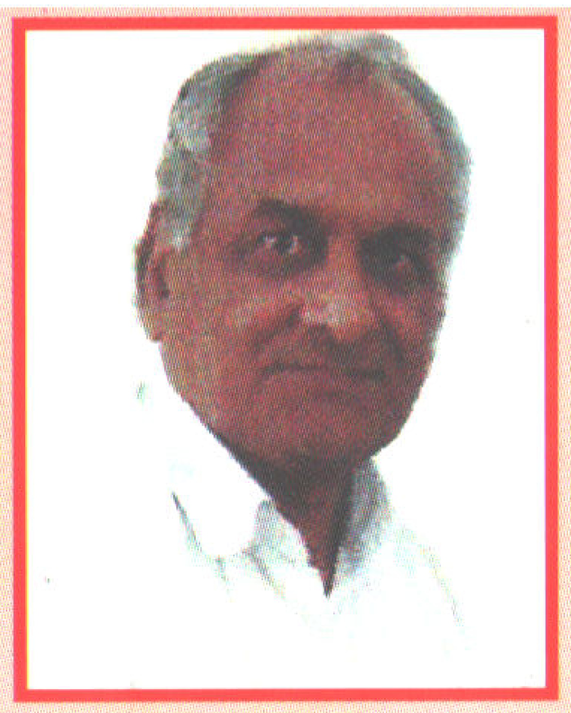

श्री सुबेसिंह गुप्ता जी का जन्म 10 सितम्बर, 1943 को दिल्ली नगर के ग्रामीण क्षेत्र जी.टी. रोड स्थित अलीपुर गाँव से लगभग 6 कि.मी. दूर अकबरपुर माजरा गाँव में हुआ। पिताजी का नाम ला. बंसीलाल और माताजी का नाम कलावती था। गाँव में दुकान और पैसों का लेन-देन करते थे जिसके लिए पड़ोस के गाँव के लोग वहाँ आते थे। उनकी यह ख्याति थी जिसको लोग कहते भी थे कि "जिस व्यक्ति ने बंसीलाल की दुकान पर कपड़ा बिछा दिया, वह कभी खाली नही उठा।" अर्थात् उनमें दयाभाव कूट-कूट कर भरा था। विधाता अच्छे व्यक्ति को ही कष्ट देता है। उनकी आँखों की रोशनी चली गई, तब बड़ा भाई आठवीं कक्षा में पढ़ता था और उससे छोटा चौथी कक्षा में था। उसे व्यवसाय को सम्भालने के लिए शिक्षा से हटा लिया गया। विवाह के बाद, वह दिल्ली आ गया तो सुबेसिंह गुप्ता को ही शिक्षा के साथ व्यवसाय भी सम्भालना पड़ा। सवेरे चार बजे उठकर देर रात तक कामों में लगे रहना पड़ता था। हायर-सैकेन्ड्री करने के पश्चात् नौकरी में लग गये और साथ में शिक्षा भी ग्रहण करते रहे। बी.ए. के बाद एम.ए. अंग्रेजी भाषा से की। नौकरी में आगे बढ़ने के लिए कई संस्थाएँ बदली। सरकारी निगम से प्रशासनिक अधिकारी पद से 1998 में स्वेच्छा से अवकाश ग्रहण करके सामाजिक साहित्य के अध्ययन और सर्जन में लग गये। हर वर्ष एक पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। वर्ष 2013 में 'राष्ट्र के वैश्य रत्न, भाग-3' के साथ उनकी वैश्य अग्रवाल समाज पर 11 (ग्यारह) पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं। साथ में 'पंचमधाम' मासिक पत्रिका का वर्ष 2009 से सम्पादन भी कर रहे हैं जिसमें विचारोत्तेजक लेखों के द्वारा समाज की सेवा कर रहे हैं। 100 (सौ) से ऊपर लेख प्रकाशित हो चुके हैं। समाज के निम्न आय वर्ग के लिए तीन सहकारी संस्थाओं की स्थापना की है। पंचमधाम प्रकाशन ट्रस्ट (पंजी.), जो पत्रिका को प्रकाशित कर रहा है इसकी स्थापना भी उन्होंने ही की है।

23 अक्टूबर, 2010 को श्री सुबेसिंह गुप्ता को उनके द्वारा अग्र साहित्य सेवा पर सेठ द्वारकाप्रसाद सर्राफ राष्ट्रीय पुरस्कार 2010 प्रदान किया गया। जिसके अंतर्गत 51000/- नकद, प्रशक्ति पत्र और प्रतीक चिन्ह आदि दिए गए।

**सूर्य भारती प्रकाशन**

**2596, नई सड़क, दिल्ली-110006**

दूरभाष : 011-23266412, 23285575

(मो.) 0-9891332357, 0-9899832711

email : suryabhartiprakashan@gmail.com

ISBN : 978-93-83424-63-4

डाक टिकटों से सम्मानित

# महापुरुष

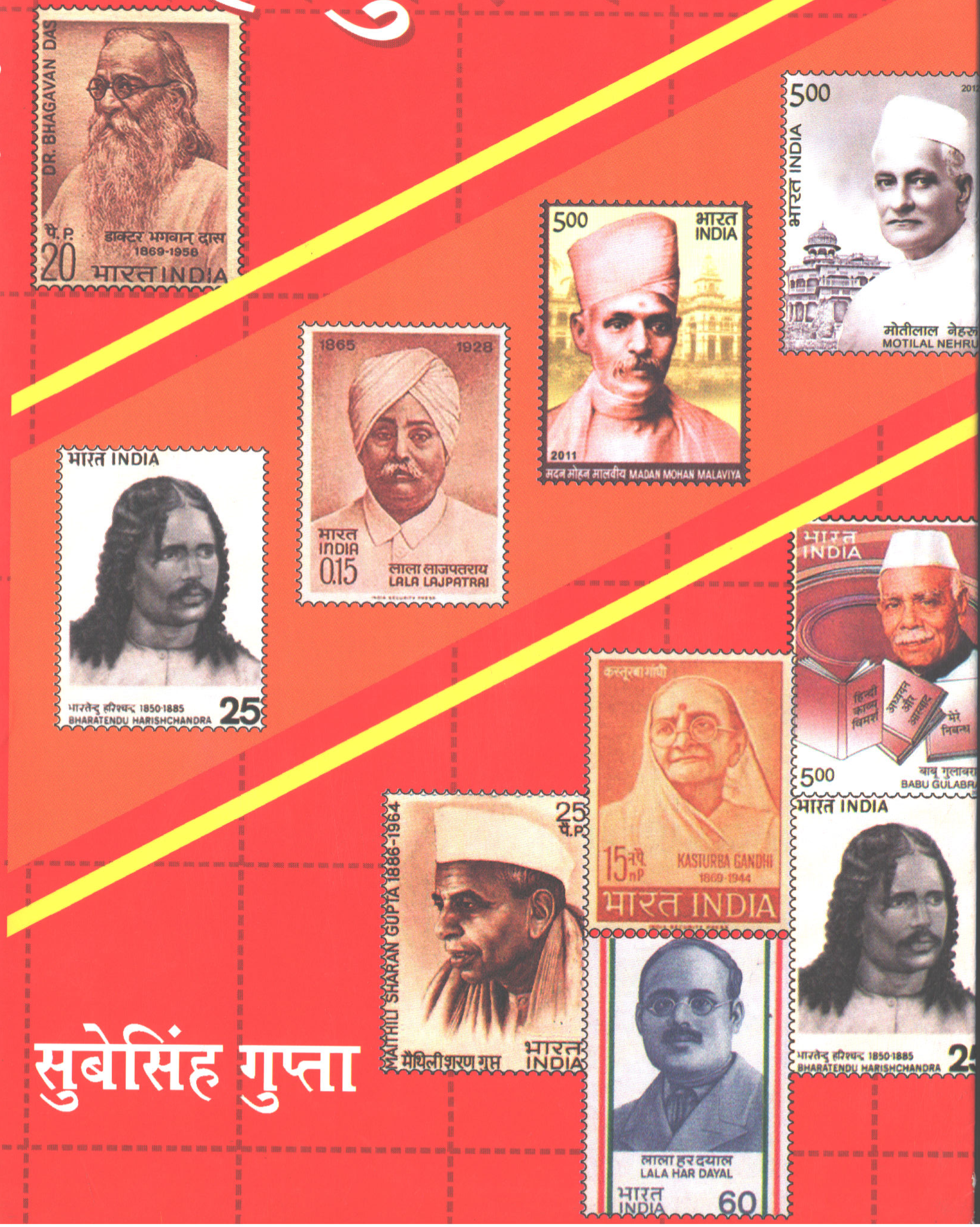


सुबेसिंह गुप्ता